UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180495
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/M43O Accession No. G.H. 1513

Author माथुर, जगदीशचंद्र।

Title ओ मेरे सपने। 1953

This book should be returned on or before the date last marked below.

ओ मेरे सपने

[पांच नटखट एकांकी]

लेखक

जगदीशचंद्र माथुर

नीलाभ प्रकाशन गृह

इलाहाबाद-१

नाटकों के सर्वाधिकार लेखक-द्वारा सुरक्षित हैं

मूल्य ३)

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन, ५ खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद-१

मुद्रक
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

'कबूतरख़ाना' की हीरोइन को

●

क्रम

निवेदन ७

नाटक खेलने वालों से ९

घोंसले १५

खिड़की की राह ३५

कबूतरखाना ६३

भाषण ७३

'ओ मेरे सपने !' ११३

परिशिष्ट :

मैं भी खेल चुका हूँ ! १६१

निवेदन

हिन्दी साहित्य के गम्भीर पाठकों और सुधी समालोचकों को "कोणार्क" के बाद शायद मेरे ये एकांकी हलके जंचें। न इन नाटकों में कोई गहन दर्शन है, न किन्हीं प्रबल प्रेरणाओं का आघात-प्रतिघात, न किन्हीं उदात्त आदर्शों की आवेशपूर्ण अभिव्यंजना !

एक बार तबियत आई कि क्यों न कुछ ऐसे रूपक लिख डालूं जिन पर किसी उद्देश्य-विशेष के आग्रह की छाप न हो ! कुछ दिल-बहलाव हो जाय !— अपना अधिक, दूसरों का कम या ज्यादा, जैसा वे समझें।

किन्तु कौन ऐसा लेखक होगा जिसकी क़लम पर सामाजिक समस्याएं सवार न होती हों, अनजाने ही या डंके की चोट के साथ ? शुद्ध मनबहलाव भी ऐसी ही मरीचिका है, जैसी शुद्ध कला। सो इन नाटकों में भी आपको कहीं बिल्कुल स्पष्ट, कहीं संकेतों के रूप

में, सामाजिक विषमताओं का निदर्शन और उन पर व्यंग्य, मिलेगा। नवीनता यही है कि यहाँ जिन कमजोरियों का खाका खींचा गया है उन पर मैंने खड़्गहस्त और कुंचित्-भ्रू होकर प्रहार नहीं किया है, बल्कि उनके अतिरंजित स्वरूप--केरिकेचर--को सामने रख कर पाठक और दर्शक को उनके बेडौलपन से परिचित कराना चाहा है। मेरी धारणा है--मुमकिन है यह धारणा ग़लत हो--कि कभी कभी मानसिक और सामाजिक रोगों का जितना ही हास्यास्पद रूप दिखाया जाता है, उतना ही अधिक उसके निदान की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट हो जाता है। इसीलिए मैंने इन्हें "नटखट नाटक" नाम दिया है-- ऐसे नाटक जिनमें पात्रों के साथ कुछ छेड़छाड़, कुछ चुहल, कुछ शरारत तो की गई है, लेकिन उनको बिल्कुल स्याह या बिल्कुल सफेद नहीं रँगा गया।

पाठक यह न समझें कि इन नाटकों की रचना किसी पूर्व-निश्चित योजना के फलस्वरूप हुई है। असल में ये एक व्यस्त सरकारी जीवन के कोनों में दुबके हुए दो चार फ़ुरसत के क्षणों की देन हैं। सन् '४८ से सन् '५२ तक के दौरान में कभी सरकारी काम काज की थकान मिटाने के लिए और कभी यों ही ये रचनायें 'बिखर पड़ीं'। थोड़े बहुत संशोधन के बाद उन्हीं का यह संग्रह प्रस्तुत कर रहा हूँ।

परिशिष्ट वाला निबन्ध--"मैं भी खेल चुका हूँ" पटने की मासिक पत्रिका "नई धारा" के रंगमंच-विशेषांक के लिए लिखा गया था और शायद इस संग्रह के वातावरण से मेल खाता है।

१५ अगस्त १९५३ — जगदीश चन्द्र माथुर

नाटक खेलने वालों से--

यदि आप रंगमंच पर किसी नाटक को (चाहे वह इस संग्रह का हो, या अन्य कोई) प्रस्तुत करने जा रहे हैं तो मेरा सुझाव है कि कृपया निम्नलिखित प्रश्नावली अपने और अपने सहकर्मियों के सामने रखें:—

(१) क्या आपके पात्रों को अपना अपना अंश याद है या वे प्राम्प्टर के आसरे काम चलाते हैं ?

(२) क्या आपने रंगशाला की सब से पीछे वाली बेंच पर बैठकर नाटक का वार्तालाप सुना है ? यदि हां, तो क्या वहां से प्रत्येक अभिनेता का प्रत्येक शब्द साफ़ साफ़ सुनाई देता और समझ पड़ता है ?

(३) क्या आपके अभिनेता या अभिनेत्रियाँ सारे नाटक के दौरान में एक ही स्वर में तो नहीं बोलते ? क्या वे लोग स्वाभाविक ढंग से रुकते, अटकते, उठते बैठते, असली स्त्री-पुरुषों की तरह बातें करते हैं या किताबी नर-नारियों की तरह ?

(४) क्या रंगमंच पर फ़र्नीचर इत्यादि इस तरह तो नहीं रखे हुए हैं कि पात्रों की शक्ल ही छिप जाय और छोटे-से रंगमंच पर भीड़ ही भीड़ नज़र पड़े ?

(५) क्या आपका पर्दा ठीक वक्त पर बिना अटके हुए गिर जाता है ? उसका अभ्यास कई वार किया गया है या नहीं ?

(६) पात्रों को कब आना और प्रस्थान करना है—इसका पक्का अभ्यास है या नहीं ?

(७) कौन ग्रीनरूम का ज़िम्मेदार होगा, कौन रोशनी का, कौन पर्दा उठाने-गिराने का, कौन मेहमानों को बैठाने का—इन तथा अन्य कर्त्तव्यों का विभाजन हो गया है या नहीं ? इन लोगों ने अपने अपने काम का यथोचित अभ्यास कर लिया है या नहीं ?

(८) क्या आपके अभिनय के नोटिस में पहले से ही यह स्पष्ट लिख दिया गया है या नहीं कि ६ बरस से कम उम्र के बच्चों को दर्शक मां-बाप अभिनय के वक्त न लायें, क्योंकि उनके रोने अथवा अन्य चेष्टाओं से विघ्न होता है ?

(९) क्या आपने उतने ही लोगों को बुलाया है जितनी आपके पास सीटें हैं, या अन्धाधुन्ध निमन्त्रण भेज दिये हैं ? देर से आने वाले 'बड़े लोगों' के लिए कुछ फ़ालतू कुर्सियां भी आपने अलग रखी हुई हैं या नहीं ?

(१०) क्या आपका 'शो' टिकट खरीदने वालों को दिखाया जायेगा या मिनन्त्रण पाने वालों को ? यदि टिकट बेचे जा रहे हैं तो आपका कर्त्तव्य है कि पहले लेखक की अनुमति प्राप्त कर लें और अपनी आमदनी से उसे रॉयल्टी देने के लिए प्रस्तुत रहें। यदि 'शो'

मुफ्त है और निमन्त्रण-पत्र भेजे जा रहे हैं, तो भी लेखक को पहले से सूचित अवश्य कर दीजिए ।

अनुभवी निर्देशकों को उल्लिखित संकेतों में कोई नवीनता शायद न झलके । लेकिन मैंने अक्सर अच्छे-भले नाटकों को इसीलिए रंग-मंच पर ढेर होते देखा है कि निर्देशकों और अभिनेताओं ने इन साधारण-सी दीखने वाली बातों पर ध्यान नहीं दिया । मैंने अपने सामने अपने ही नाटकों की हत्या होती देखी है और आप मेरी तकलीफ़ का अन्दाज़ कर सकते हैं। इसलिए मेरा यह आग्रह है कि इन संकेतों को छोटा मुंह बड़ी बात न समझें ।

एक बात और । इस संग्रह के प्रत्येक नाटक के साथ मैंने एक चित्र दिया है, जिसमें रंगमंच की स्थिति दिखाने की चेष्टा की गई है । हो सके तो तदनुसार अपनी 'सेटिंग' तैयार कीजिए । लेकिन उससे भी सरल और अधिक प्रभावोत्पादक सेटिंग आप देना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी ।

—लेखक

ओ मेरे सपने

घोंसले

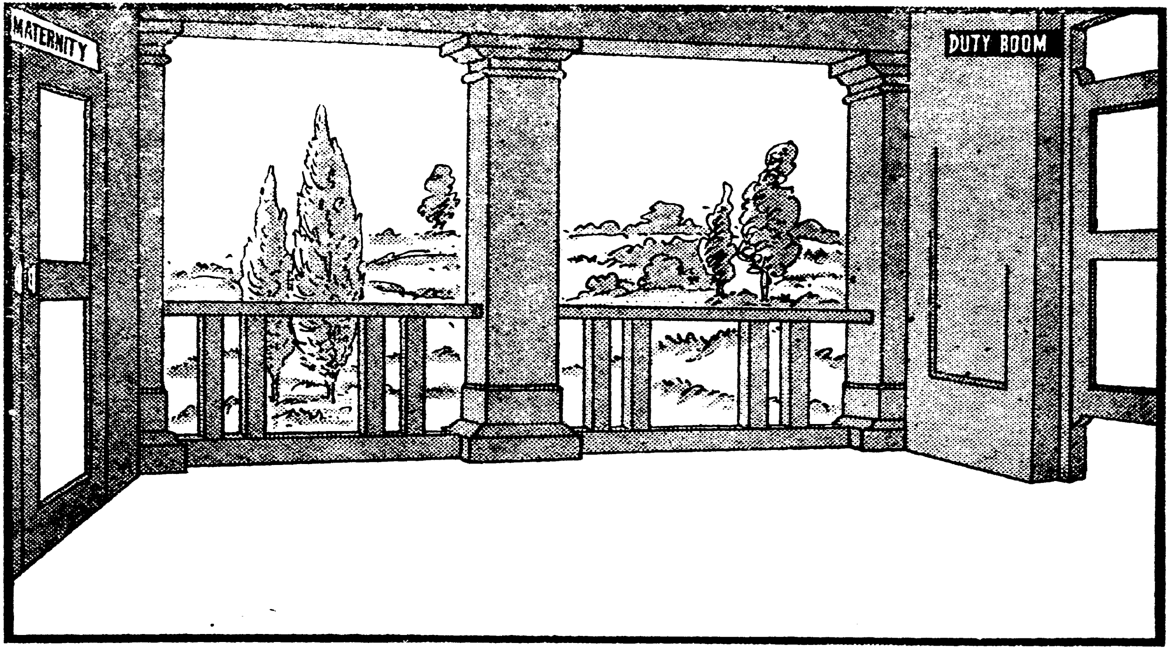

घोंसले——अस्पताल का बरामदा

[एक बरामदा। बायीं तरफ़ दो कमरों में जाने का रास्ता, दाहिनी तरफ़ अन्यत्र जाने का। सामने एक स्तम्भ और रेलिंग। बाहर की हरियाली श्यामल होकर झलक रही है। दरवाजों के ऊपर लिखा है—मेटर्निटी वार्ड। कभी-कभी इधर-से-उधर नर्स और दाइयाँ तामचीनी के नाना प्रकार के बर्तन लिये, आती-जाती नजर पड़ती हैं, कभी-कभी द्रुत गति से, कभी आराम से।

समय लगभग ७ बजे शाम। पर्दा उठने पर जगमोहन रेलिंग के सहारे दर्शकों की तरफ़ पीठ किये खड़ा दीखता है। बाहर की ओर देख रहा है। सिगरेट पी रहा है और धुआं फेंक रहा है।

थोड़ी देर में दाहिनी ओर से विजय का प्रवेश। विजय जगमोहन को देखकर चौंक-सा उठता है, गौर से देखता है, फिर करीब जाता है।]

विजय : हलो, बन्धु !

[जगमोहन मुड़कर देखता है। सुन्दर चेहरा, किन्तु इस समय चिन्ता की रेखाएँ। फैशनेबल बिना रिम का

चश्मा, कपड़े भी अच्छे सिले हुए, टाई लेटेस्ट फैशन। लेकिन मुखड़ा कुम्हलाया।]

जगमोहन : (कुछ अनिश्चित-सा और अनमना-सा) हलो !

विजय : पहचाना ?

जगमोहन : (हिचकिचाता हुआ) कोशिश तो कर रहा हूँ।

विजय : कमरा नं० ३, मेगस्ताफ़ होस्टल, प्रो० करुणाकर की क्लास।

जगमोहन : (पहचानकर सोल्लास हाथ मिलाता हुआ) विजय ! विजय पहलवान !

विजय : (हँसता हुआ) "खंडहर बता रहे हैं, इमारत बुलन्द थी" ! अब कहाँ वह पहलवानी ? जब से गामा रिटायर हुआ, हमारी भी तबियत उचट गई।

जगमोहन : उन दिनों की खूराक ने तो कुछ असर दिखाया है। चार अंडे, सेर भर दूध, चार आउँस मक्खन—सब को घोल कर एक साँस में चढ़ा लेते थे तुम।

विजय : (फिर वही स्वच्छन्द हँसी) और वह सोते वक्त पाव भर मलाई। भई, उसी का तो यह असर है, यह गद्देदार शरीर। लेकिन बाल तो खिचड़ी हो चले। तुम तो यार, जगमोहन, वैसे के वैसे ही हो, ख़जाने का नया रुपया। वही जुल्फ़ें, वही छरहरा बदन, वही नपा तुला फ़ाल्ट्लेस सूट, वही सफाचट ......(चौंक कर) अरे !

जगमोहन : बातूनी तुम भी वैसे ही हो !

विजय : (वही आश्चर्य भरी मुद्रा) न होता तो भी तुम्हारी बढ़ी हुई हजामत को देख कर तो बोल ही उठता। भई जगमोहन, तुम्हारी हजामत तो वह चिकनी होती

थी कि ठोड़ी पर मक्खी भी फिसल पड़े। यह हुआ क्या ?

[एक नर्स का एक तामचीनी की ट्रे में सर्जरी के औज़ार लिये हुए प्रवेश। हँसमुख, साँवली, कुछ मोटी, कुछ शोख़। सफेद फ़ाक के नीचे स्कर्ट। विजय को देखकर रुक जाती है।]

नर्स : हलो मि० विजय नारायण !

विजय : हलो नर्स ! हलो सिस्टर ! क्या हाल है ?

नर्स : मज़े में। कहिए आप फिर आ पहुँचे। कहाँ हैं मेम साहब, कमरा मिल गया ? इस बार पहले से कन्सल्ट करने के लिए भी नहीं आये ? क्या बाहर रहे थे आप लोग ?

विजय : अरे, नहीं सिस्टर। तुम तो इतनी जल्दी नतीजे पर पहुँच जाती हो। क्या तुम्हारे अस्पताल में और किसी मतलब से आना गुनाह है ?

(नर्स हँसती है।)

जगमोहन : (चिन्तित स्वर में नर्स का ध्यान आकृष्ट करने के लिए) नर्स !

नर्स : (जगमोहन पर ध्यान न देती हुई, उसी हँसी भरे स्वर में) और क्या मतलब होगा मि० विजय ? यहाँ तो फलने-फूलने वाले ही आते हैं।

विजय : हाँ, और दिवालिये होकर जाते हैं !

नर्स : खूब !....साहब, बच्चे तो दौलत हैं, दौलत !

विजय : दौलत ? सुनो नर्स। पहला बच्चा खुशी का आलम; दो बच्चे खतरे की घंटी; तीन बच्चे, बस भई; चार बच्चे, खुदा की पनाह; और...पाँच बच्चे, मा – त – म !!

जगमोहन : (**चिन्तित स्वर**) नर्स !

नर्स : (हँसती हुई) आपकी शक्ल से तो नहीं मालूम होता मि० विजय, कि आप खुदा की पनाह माँगते हो। चार लड़कियों के बाप और......

विजय : और वौर कुछ नहीं। हिन्दुस्तान की आबादी का ठेका हमीं दोनों ने थोड़े ही लिया है।

जगमोहन : नर्स !

नर्स : (**विजय से**) तो फिर कैसे आना हुआ ?

विजय : वे अपनी एक सहेली को देखने आई थीं, मिसेज़ मेहरा...

नर्स : छः नम्बर कमरा।

विजय : हाँ, लौटीं तो बोलीं, चलो डाक्टर मधुरानी से अपना 'चेक अप' करा लूँ।

नर्स : तभी ड्यूटी-रूम से वज़न तोलने की मशीन की माँग हुई। हमारी डाक्टर्नी साहब को भी वज़न तोलने की मशीन का मर्ज़ है, जुकाम हो तो वज़न लो, दिल की तकलीफ़ हो तो वज़न।...मैं तो उस मशीन के करीब नहीं फटकती।

विजय : आज तो कुछ दुबली लग रही हो, नर्स !

नर्स : दुबली ! बातें करके ही तो अपना मुटापा कम करती हूँ मि० विजय। चार मरीज़ों के रिश्तेदारों से झक-झक, और आधा पौंड वज़न कम।

जगमोहन : नर्स।.. क्या मैं पूछ सकता हूँ—

नर्स : (**मुस्कराती हुई और हाथ की ट्रे को देखती हुई**) अभी नहीं, अभी तो......

विजय : नर्स, जगमोहन मेरे दोस्त हैं, पुराने दोस्त !

नर्स : तब तो आप इन्हें समझाइए। अरे, मुझे तो यहीं

खड़े-खड़े बहुत देर हो गई। (**जाते हुए मुस्कराहट**) आपने तो मेरा बहुत वज़न घटा दिया मि० विजय !

(**दाहने कमरे में चली जाती है।**)

जगमोहन : नर्स, नर्स !

विजय : क्या बात है, भई, जगमोहन !.. क्या तुमने अपना पेशा छोड़ा नहीं अभी तक ?

जगमोहन : पेशा ? कौन सा पेशा ?

विजय : अरे, वही शौकीनी, मुहब्बतबाजी ?

जगमोहन : इस लड़की से ?...तुम भी विजय......

विजय : क्यों ? मुस्कराती तो अच्छा है।... लेकिन हाँ, वह बात नहीं जो तुम्हारी उन दिनों की लाड़लियों में थी।... कहाँ कहाँ गईं वे सब ?... तुम तो यार, बहुत आँखों के सितारे थे उन लोगों के।...सारे अच्छे-अच्छे कटाक्ष तो तुम्हारे ही लिए रिज़र्व थे ! हम लोगों को तो जूठन भी नसीब नहीं होती थी।... कहाँ गई वह रंजना ?

जगमोहन : (**कुछ उदासी के भाव से**) सुना शायद उमेश से शादी हो गई।

विजय : उमेश ? वह बाँगड़ू।

जगमोहन : इंजीनियर बन गया है।

विजय : और वह दारु लता ?

जगमोहन : दारु लता ?

विजय : वही न जिसकी किताब तुम्हारी किताब से बदल गई थी और जिसकी साइकिल से तुम्हारी साइकिल टकरा गई थी ?

जगमोहन : दारु लता नहीं तरु लता !... वह तो सुना है अब काली मुखर्जी की बीवी है।

विजय : अरे वह, कालू। वह तो भई, सिवाय पढ़ने और खेलने के और कुछ जानता ही नहीं था। पतलून पहनने का भी तो शऊर नहीं था उसे।

जगमोहन : हां, वही। अब एयर-फोर्स में ऊँचा अफ़सर है।

विजय : तब तो 'ए-वन' क्लास की तो सिर्फ रेखा ही रह गई।

जगमोहन : वह था न शिव प्रसाद ?

विजय : वह रुई की वास्कट वाला ? भई, मैं उसे चिढ़ाया करता था कि जब तक तुम यह वास्कट पहनोगे, तब तक तुमसे कोई लड़की शादी नहीं करेगी।... मगर पढ़ने में तेज़ था और नाइट स्कूल चलाने का भी खब्त था शायद उसे।

जगमोहन : रेखा की शादी उसी से हुई है।

विजय : नहीं यार कहाँ रेखा और कहाँ......

जगमोहन : आइ० ए० एस० में आ गया कम्बख्त ...

विजय : यह भी परमात्मा को अच्छा मज़ाक सूझता है। जितनी अच्छी-अच्छी अप्सरा जैसी लड़कियाँ थीं, वे तो चली गईं इन टट्टुओं के साथ और तुम जैसे गन्धर्व, बढ़िया ड्रेस, मनोहर रूप, नये से नये फैशन के अगुआ, बातचीत में निपुण, जो जल्सा हो उसी में स्वागत करने के मुंतज़िम, तुम, हमारे छबीले सरदार, यों ही रह गये।... न जाने क्यों हमेशा ऐसा होता है।... खैर, फिर भी तुम्हारी बात दूसरी है। तुम क्या परवाह करते होगे ?

जगमोहन : क्यों ?

विजय : तुम्हारा तो वह सिद्धान्त था न, 'यदि सभ्यता को बचाना है तो कानून के जोर से शादियों को बन्द कर

देना चाहिए । शादी वह दीवार है जो मनुष्य अपनी आत्मा-रूपी अनारकली के चारों तरफ़ चिनता है ताकि वह घुट कर मर जाय ।'. . .भई, जगमोहन तुम्हारी वह 'थीसिस' लाजवाब थी शादी के खिलाफ़ । पूरी हुई ?

जगमोहन : थीसिस ? (खोखली, आत्म-प्रतारणा से भरी हँसी) थीसिस !

विजय : दो चार खूसट प्रोफेसर बहुत भड़कते थे तुम्हारी उस थीसिस से । लेकिन सारी यूनिवर्सिटी में चर्चा थी उसकी । कभी-कभी तो दोस्त, मुझे तुम्हारी दलीलों की अब भी याद आती है ।

जगमोहन : चार लड़कियों के पिता हो चुकने पर भी ?

विजय : पछतावा तो, भाई जान, मैं करता ही नहीं । लेकिन (हँसकर) प्रतिज्ञाएँ तो अक्सर करता रहा हूँ ।

जगमोहन : (विचार मग्न) मैंने भी प्रतिज्ञाएँ कीं और तोड़ी हैं ।

विजय : सुनो भी ! जब दूसरी लड़की हुई तो हम लोगों ने कहा चलो पहली के साथ खेलने के लिए सहेली चाहिए । तीसरी हुई तो सोचा एक 'स्पेयर पार्ट' भी तो हो । जब चौथी का नम्बर आया तो क्या कह कर तसल्ली पाते ? कहा कि चलो शुरू -शुरू में ही इन सब झंझटों से निबट लें, आगे फुरसत रहेगी । अब, दोस्त, इसी अवस्था में आकर प्राणायाम करने का इरादा है ।

जगमोहन : और हर मर्तबे तुम इसी अस्पताल में आते रहे हो ?

विजय : मेरी बीवी आती रही है और मुझे भी खास मौके पर मौजूद रहना पड़ता है । डाक्टरों का कहना है कि पति की निकटता के विश्वास से, होनेवाली माता की हिम्मत बढ़ती है ।

जगमोहन : और. . . और होनेवाले पिता की हिम्मत ?

विजय : तुम्हारी सिगरेट ठंडी हो चली ।

जगमोहन : ओह ।. . . (**जेब से टिन निकालता हुआ**) तुम पियोगे ?

विजय : नहीं, मैं तो पीता ही नहीं । लेकिन देखता हूँ तुम तो चेन स्मोकर हो । वह कालिज के दिनों वाली पाइप कहाँ गई ?

जगमोहन : वह पाइप तो 'डमी' थी, रोब के लिए । अन्दर उस में कुछ नहीं होता था ।

(**सिगरेट जलाकर कश लेता है ।**)

विजय : लेकिन तुम जँचते खूब थे उसमें, न जाने कितनी तो तुम्हारी उसी धजा पर मरती थीं ।

जगमोहन : (**बात का रुख पलटते हुए**) विजय, लड़कियों की पैदायश के वक्त अस्पताल आते थे तो इंतज़ारी की घड़ी में भी तुमने सिगरेट नहीं फूंकी ?

विजय : तबीयत तो करती थी कि सिगरेट क्या घर फूंक डालूं, यह अस्पताल फूंक डालूं. . . .

जगमोहन : (**गहरी दिलचस्पी के साथ**) सच ?

विजय : क्या पूछते हो ! अरे, इसी बरामदे में चहलकदमी करते-करते मैंने रात के तीन-तीन पहर बिता दिये हैं . . .बारह का घंटा बजा । सुनसान ।. . .कोई ख़बर नहीं ! ड्यूटी-रूम में लाइट, मेटर्निटी-रूम में लाइट, पास के जनरल वार्ड से दो चार नये बच्चों के रोने की आवाज़ । एक का घंटा बजा, वही बात । दो का घंटा बजा, वही काला रेगिस्तान, जिसका कोई अन्त नहीं । याद है न बच्चन की वह पंक्ति "रात्रि का अन्तिम प्रहर था झिलमिलाते थे सितारे". . . . . . .

जगमोहन : (**पूरा करता हुआ**) "वक्ष पर युग बाहु धारे म खड़ा सागर किनारे" !

विजय : अरे कहाँ सागर का किनारा और कहाँ झिलमिलाते सितारे !.........सितारे भी तो मज़ाक में आँख मारते-से दीख पड़ते हैं, मानो कहते हों, तो, बच्चू खूब फँसे।

जगमोहन : (**कुछ रस लेता हुआ**) कभी-कभी तो सोचते होगे कि किस झोंक में यह ग़लती कर डाली।

विजय : ग़लती ?....लगता था कि अहमक बन गये सरासर अहमक !

जगमोहन : बिल्कुल अपराधी की-सी भावना—

विजय : बिल्कुल ! मानो गुस्से में आकर किसी दोस्त के तमाचा मार बैठे हों और बाद में फुरसत से मलाल करने बैठे हों। क्या पूछते हो यार, बड़ी नाजुक हालत होती है।

जगमोहन : और कोई तसल्ली देनेवाला भी नहीं।

विजय : तसल्ली ?...अरे, यह नर्स जो अभी इतना चहक-चहक कर बातें कर रही थी, उस मौके पर मुझे ऐसे देखती है मानो रास्ते का ठीकरा हूँ, ठीकरा ! डाक्टर्नी आती है तो एक नज़र डाल कर मुंह फेर लेती है, जैसे नौकरी के उम्मीदवार को मिल मालिक देखता है। यहाँ तक कि अस्पताल की नौकरानी की आँखों को भी दो टूक नहीं सुहाते।

जगमोहन : यानी मर्द क्या हुआ फैसले का मुंतज़िर मुद्दालह हो गया।

विजय : बिल्कुल ! तुमने मेरे मुंह की बात छीन ली जगमोहन !

लोग कहते हैं, इस मौके पर माँ को बड़ी तकलीफ़ होती है, दूसरा जन्म होता है। मैं कहता हूँ बाप पर जो गुज़रती है उसका भी किसी ने ख्याल किया है?.... इधर-से-उधर नर्सें जा रही हैं, वह औज़ार गये, वह डाक्टर की पुकार हुई, कोई इधर आया कोई उधर गया, लेकिन आप हैं कि खड़े हैं बुत की तरह, देख रहे हैं बेकार!

जगमोहन : देख रहे हैं टुकुर-टुकुर और जला रहे हैं....सिगरेट।

विजय : हाँ जी।....और कभी-कभी उसी पहचानी आवाज़ में कराहें भी सुन पड़ती हैं। लेकिन हम हैं कि कुछ कर भी नहीं पाते। अरे, बीवी अगर बीमार हो तो दवा दे दें, नाराज़ हो तो खुशामद कर लें, उदास हो तो मनबहलाव कर लें। मगर इस हालत में आप कर ही क्या सकते हैं? करीब तक फटकने की इजाज़त नहीं (जगमोहन को देखता हुआ, रुककर) क्यों किस सोच में पड़ गये?

जगमोहन : कुछ नहीं। (चिन्तित स्वर में) पर नर्स अभी तक नहीं आई।

विजय : यार, मामला क्या है? किसी झमेले में पड़ गये हो क्या?

जगमोहन : जो भी समझो। (टालता हुआ) बड़ी देर कर दी इस नर्स ने।

विजय : जगमोहन, बच्चू हमीं से उड़ते हो।...तुमसे ऐसी गलती कैसे हो गई?

जगमोहन : कौन-सी गलती?

विजय : तुम तो हमेशा कोयल पंछी की तरह रहे थे।...घोंसले और अंडों से कोई वास्ता नहीं।

जगमोहन : अरे नहीं, भई, अब तो घर का पंछी हूँ। परकैंच परिन्दा!

(नर्स का प्रवेश। जल्दी-जल्दी दूसरी तरफ़ को जाती है)

जगमोहन : नर्स, नर्स, कोई ख़बर ?

नर्स : खास ख़बर है। लेकिन पहले डाक्टर को बुलाना है।

(बाईं तरफ दौड़ते हुए प्रस्थान)

जगमोहन : खास ख़बर ! न जाने क्या मतलब है उसका ?

विजय : परेशान होने की बात नहीं। मुझसे पूछो, बार-बार बार.........

जगमोहन : मैं तो यार परेशान हूँ। मुंह सूख रहा है, दिल की धड़कन बढ़ रही है।

(सिगरेट जलाता है।)

विजय : सिगरेट क्यों जलाते हो, और मुंह सूखेगा।

जगमोहन : सिगरेट के बिना तो साँस लेना महाल हो रहा है।

विजय : अब समझा।

जगमोहन : क्या ?

विजय : क्यों तुम्हारी हजामत इतनी बढ़ी हुई है। मैं भी तो कहूँ कि आखिर माजरा क्या है ?

जगमोहन : समझ लो दो रोज़ से चाय और सिगरेट पर जी रहा हूँ। हलक के नीचे रोटी उतारने को तबीयत ही नहीं करती।

विजय : चलो कोई बात नहीं है। ऐसा ही सेवा-भाव बीवी की कृपा-दृष्टि को कायम रखता है।

जगमोहन : बीवी की कृपा-दृष्टि !

(म्लान हँसी)

विजय : दुनिया जानती है कि दाम्पत्य-जीवन की जो इमारत वर-वधू के रसीले प्यार की बुनियाद पर खड़ी होती

है, समय बीतने पर उसे एक सहारे की ज़रूरत पड़ती है, पति-पत्नी की एक दूसरे के लिए चिन्ता और परेशानी का सहारा । प्यार का परिधान ही तो आश्वासन का आलिंगन बन जाता है, जगमोहन !

जगमोहन : जो चिन्ता मुझे सता रही है वह दूसरी ही है ।

विजय : दूसरी चिन्ता ?...ग़ैर मुमकिन ।

जगमोहन : सुनो विजय, जब तुम्हारी श्रीमती को पहली बार अपने माता होने का ज्ञान हुआ तो उसने क्या कहा तुम से ?

विजय : अजब सवाल है तुम्हारा । स्त्री इस समाचार को ज़बान से नहीं, संकेत के द्वारा बताती है, वही संकेत जो उषा की लाजभरी लालिमा में बिखरता है ।

जगमोहन : तुम तो विजय, शायरी करते हो । (गहरी साँस) मेरी पत्नी मुझसे बोली—यह सारा कसूर तुम्हारा है ।

विजय : सारा कसूर ?

जगमोहन : जी !

विजय : यह तो, भई ज्यादती थी उनकी ।

जगमोहन : ज्यादती ? (कुछ रुककर) बहुत दिनों बाद तुम से मुलाकात हुई है विजय, लेकिन मेरे पुराने और गहरे दोस्त रह चुके हो । इसलिए क्या छिपाऊँ तुमसे । मेरे अनुभव में तो विवाहित जीवन दो हिस्सेदारों का एक बैंक है ।

विजय : बैंक ?

जगमोहन : हाँ, वह बैंक जिसमें पति गुमसुम हिस्सेदार (sleeping partner) होता है, और पत्नी हिस्सेदार भी और मैनेजिंग डायरेक्टर भी ।

विजय : (**हँसते हुए**) खूब ! मगर स्लीपिंग पार्टनर भी तो कभी-कभी अपने अधिकारों पर अड़ जाता है ।

जगमोहन : कौन सिर दर्द मोल ले । एक दिन ही की तो बात नहीं है ।

विजय : कोई चिन्ता नहीं है । माँ बनी नहीं कि पत्थर का कलेजा भी पिघल जायेगा । डर यही है कि तब तुम्हारा कतई ख्याल करना न छोड़ दें ।

जगमोहन : उसी उम्मीद का तो आसरा है ।

विजय : ऐसी भी क्या मायूसी ! आखिर कहाँ की शादी तुमने ?

जगमोहन : वह थी न अनिल कुमारी ?

विजय : अनिल कुमारी ? वही तो नहीं जो एक ही क्लास में तीन बरस तक डटी रही थी !

जगमोहन : जी हाँ ।

विजय : (**उसी धुन में**) वही जिन्हें —

(**रुक जाता है।**)

जगमोहन : हाँ हाँ, पूरी करो बात । वही जिन्हें हम लोग अग्नि-बोट कहते थे ।.... विजय, उन्हीं से मेरी शादी हुई है । तुम चुप हो ।.... सोचते होगे कि जगमोहन वहाँ कैसे फँस गया । उसका भी अलग किस्सा है ।

विजय : (**कुछ पसोपेश में**) नहीं-नहीं...फँसना क्यों कहते हो । भई....हार में जो बिंधा, वही मोती ।

जगमोहन : हार नहीं, विजय गले की रस्सी ।

विजय : तुम भी जगमोहन...(**बात मोड़ते हुए**) लेकिन मुझे तो याद नहीं पड़ता कि कालिज में तुम्हारे और उनके बारे में चर्चा हुई हो ।

जगमोहन : बात तबकी है जब तुम यूनिवर्सिटी छोड़ आये थे । एक दिन मैटिनी शो देखने देर से पहुँचा, पिक्चर

शुरू हो चुकी थी। बाहर था उजाला, अन्दर अँधेरा। दिखाई न दिया कि किसके बराबर वाली सीट में जा बैठा हूँ; वह गोरी है कि काली, दुबली है या मोटी, टेढ़े सुभाव की है या गऊ !...लेकिन...लेकिन... विलायती सेण्ट की भीनी सुगन्ध आ रही थी, सामने पर्दे पर कोई रोमाण्टिक सीन चल रहा था। और... विजय, मुझे तो तुम जानते ही थे...?

विजय : सोचा थोड़ी तफ़रीह ही सही......

जगमोहन : सच मानो मैंने सिर्फ़, हाथ ही दबाया था। लेकिन, वे हाथ जो बँधे तो बस पुरोहित के सामने पाणिग्रहण के बाद ही खुल पाये !

विजय : तो क्या बुरा हुआ। दुनिया में ऐसे ही हाथों हाथ बिका जाता है।

जगमोहन : (**गहरी सांस**) यहाँ तो अपने ऊपर ऊँची कीमत लगा रखी थी, दोस्त। क्या मालूम था यों—

विजय : आदमी का मोल ही क्या ? अब मुझे ही लो—

(**नर्स का तेजी से प्रवेश**)

नर्स : विजय बाबू। बाहर आपकी मेम साहब आपकी राह देख रही हैं, जल्दी बुलाती हैं।

जगमोहन : (**पुनः चिन्तित स्वर**) नर्स !

विजय : जल्दी बुलाती हैं ?

जगमोहन : नर्स, डाक्टर्नी कहाँ है ?

नर्स : लेबर रूम में। दूसरे रास्ते से पहुँच गई। थोड़ा इंतज़ार कीजिए, अभी आई।

(**तेजी से दाहिनी ओर प्रस्थान।**)

विजय : **अच्छा, तो जगमोहन, उन्हें मोटर में बैठा कर अभी आया।**

जगमोहन : हाँ, दोस्त ! तुम्हारी वजह से कुछ तबीयत बहल गई, कुछ आपबीती कह ली । अब फिर अकेले में तो बस, सिगरेट ....

(सुलगाता है ।)

विजय : यह घड़ी ऐसी ही होती है, एक-एक मिनट मानो पहाड़ हो...लेकिन...थोड़ी ही देर में...जब ख़बर सुनोगे तो...दिल हल्का हो जायेगा...शायद बल्लियों उछलने लगे । (मुस्कराते हुए हाथ हिलाता हुआ) चीरियो !

(प्रस्थान)

जगमोहन : (सिगरेट हाथ में, चेहरे पर अविश्वासपूर्ण मुस्कान) चीरियो ! (कुछ रुक कर) हल्का दिल ।...वे जमाने ही लद गये जब इधर-उधर फेंकने की खातिर दिल को हल्का कर रखा था । (रेलिंग का सहारा लेकर खड़ा हो जाता है ।) यह नर्स साफ़ जवाब क्यों नहीं देती ? कोई कम्प्लिकेशन तो नहीं हो गया ?... लेकिन कुछ तो कहती ।...ये अस्पताल वाले भी अपने को न जाने क्या समझते हैं ?....लेकिन विजय पर भी तो यही बीती ।...क्या आदमी है, चार लड़कियाँ और माथे पर शिकन नहीं ।....मैं तो एक की चिल-पों भी कैसे बर्दाश्त कर पाऊँगा ? उफ़ !..कैसी मुसीबत है !...(सिगरेट खत्म हो जाती है । जेब में हाथ डालकर सिगरेट का पैकिट निकालता है । साथ में तार का फार्म निकला चला आता है) तार का फार्म ! ... इनके पापा को फौरन ख़बर भेजनी होगी । (रेलिंग पर तार का फार्म रखकर फाउंटेनपेन से लिखते हुए) क्या बुराई है...अभी से लिख कर तैयार रख लूँ...एक

ही शब्द तो जोड़ना होगा, "सन्"...या.."डॉटर" (कुछ रुकता है)....बेटा ...या बेटी । खूब... (लिखते हुए) श्री कान्तिलाल, जगतरोड, कानपुर ... (जिस तरफ पीठ किये खड़ा है उधर से नर्स का प्रवेश । जगमोहन को लिखते हुए देखकर रुक जाती है, और सुनती है।) ! ब...धा...ई....नहीं..नहीं ...नाती... (रुकता है) या नातिन..(कुछ हँसकर) मु.....बा....र.....क। दो.....नों ...ठीक...हैं।...जग....मोहन...(फिर अल्पहास) नाती या नातिन !!....

नर्स : (मुस्कराती हुई आगे बढ़कर) लाइए यह मुझे दीजिए ... मि० जगमोहन !

जगमोहन : (चौंककर) ऐं ?

नर्स : आप....अन्दर जाइए।....आपकी बुलाहट है।... तार में पूरा कर लूँगी।

जगमोहन : तार !....तुम्हारा मतलब—

नर्स : (तार हाथ में लेती हुई) जी हाँ, जी हाँ! मुझे मालूम है तार में क्या लिखा जायेगा। आप अन्दर जाइए...आपको भी मालूम हो जायेगा। (धक्का-सा देकर जगमोहन को अंदर भेज देती है । फिर तार पढ़ते हुए) श्री..कांतिलाल...

[तार का शेष अंश बिना बोले हुए, पढ़ती है और एक स्थल पर कलम से संशोधन करती है इतने में बदहवासी की हालत में विजय का प्रवेश।]

विजय : जगमोहन ! जग... (नर्स को देखकर रुक जाता है। फिर झुंझलाहट के स्वर में) नर्स !

नर्स : (**ईषत् मुस्कान**) कहिए मि० विजय नारायण !

विजय : मैं पूछता हूँ, नर्स, यह तुमने कैसा मज़ाक किया ?

नर्स : मज़ाक ? क्यों, मिसेज़ नारायण नहीं मिलीं क्या ?

विजय : मिलीं तो ! मोटर पर रवाना करके आ रहा हूँ। लेकिन ...लेकिन...तुमने भला मुझे बता क्यों न दिया ?

नर्स : मैंने सोचा उन्हीं के मुंह से सुनने में यह बात मीठी लगेगी।

विजय : मीठी। (**तनिक हँसी**) खूब नर्स।..और मैं जगमोहन से शेखी बघार रहा था कि (**रुककर चारों तरफ देखते हुए**) ....लेकिन...जगमोहन कहाँ है ?

नर्स : अन्दर गये हैं।

विजय : क्यों ? सब ठीक है न ?

नर्स : यह लीजिए। यही तार जा रहा है उनके ससुर के नाम।

(**विजय तार हाथ में लेकर पढ़ता है।**)

विजय : श्री...कान्ति लाल...जगत रोड...कानपुर...नाती ...(**रुकता है**) नातिन...(**दुबारा**) नाती-नातिन....मुबारक। (**कुछ अचरज-से**) नर्स। क्या मतलब ?

नर्स : आगे पढ़िए।

विजय : तीनों ठीक हैं।...तीनों। नर्स।...तीनों ?

नर्स : जी..तीनों...यह देखिए जगमोहन जी वापस आ गये।

(जगमोहन का प्रवेश।)

विजय : (**मतलब समझते हुए**)अरे, वाह, भई, जगमोहन! ... वाह, मेरे शेर !...(**करीब जाकर जोर से हाथ मिलाता हुआ।**) पहली बार ही यह जौहर ! इस

रफ्तार से तो थोड़े ही दिनों में तुम मुझे भी मात दे दोगे । खिलाओ, मिठाई, इसी बात पर !

नर्स : इनके चेहरे पर तो मुर्दनी छाई है । ज़बान खुलती ही नहीं ।

विजय : क्या बोलीं भाभी साहिबा !

नर्स : कमाल की दिलेर हैं मिसेज़ मोहन ।.. जब मैंने कहा दो हैं तो बोलीं......

जगमोहन : (**बात पूरी करता हुआ**) कि इनके सब काम बेढंगे होते हैं ।

नर्स : तो आपसे भी वही बात कही ?

विजय : एक लड़का और एक लड़की । तराजू के दो बराबर पल्ले ।... तुम तो यार, खुशनसीब हो...। मैं तो इसी फेर में हूँ कि यह पाँचवीं भी कहीं लड़की ही हुई तो...

जगमोहन : पाँचवीं ? विजय, तुम्हारा मतलब--

विजय : (**मजबूरी के स्वर में**) हाँ, भई !

जगमोहन : खूब ! (**जोर से हँसते हुए विजय से हाथ मिलाता है ।**) खूब !!

(**तीनों ठहाका मार कर हँसते हैं ।**)

(**पर्दा गिरता है ।**)

खिड़की की राह

पात्र

दिलीप

चन्दू

प्रवीण

उर्मिला

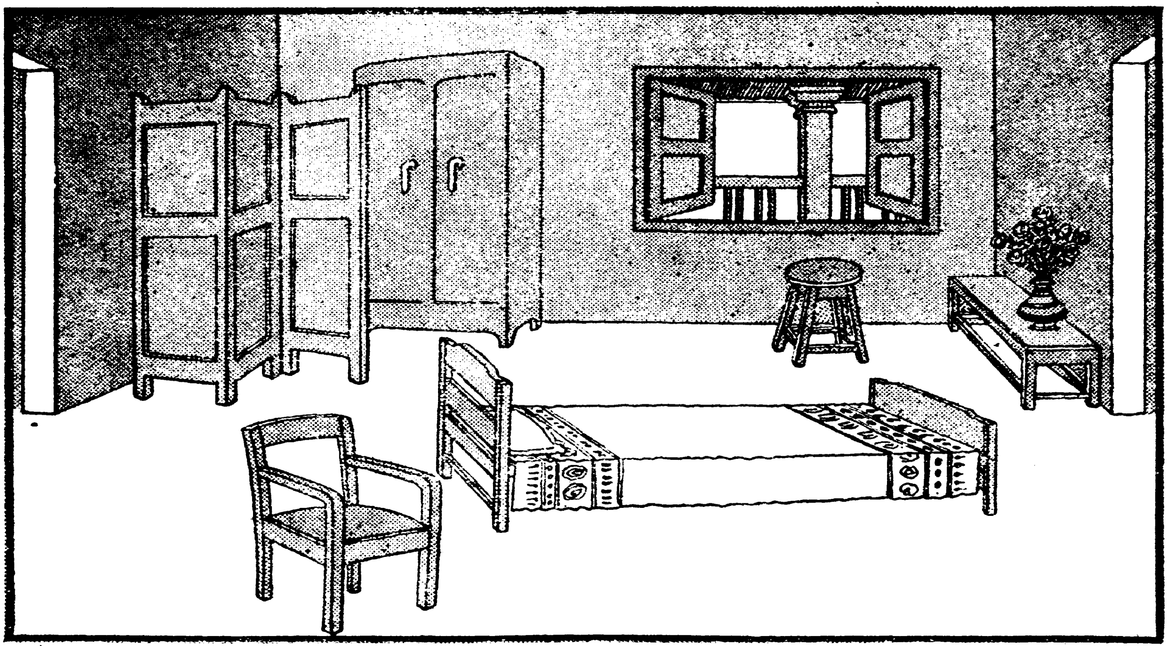

खिड़की की राह--प्रवीण के सोने का कमरा

[कमरे की दीवारें आसमानी रंग की हैं और उसमें पर्दे, पलंग-पोश, मेजपोश, कुर्सियों की गद्दियाँ भी लगभग उसी रंग से मेल खाती हैं। सामने वाली दीवार में दाहिनी ओर एक चौड़ी और नीची खिड़की है, जिसके नीचे एक छोटा स्टूल है ! बायें कोने में एक लकड़ी के फ्रेम वाला पर्दा इस तरह रखा है कि उसकी आड़ में कपड़े वगैरह बदलने का प्रबन्ध रहे। पर्दे और खिड़की के बीच में एक फैशनेबल पलंग है, जिस पर एक सुन्दर पलंगपोश बिछा है ! एक वार्ड्रोब के ढंग की आलमारी भी है और इधर-उधर कुछ कुर्सियां और छोटी मेजें हैं, फूलदान भी हैं। बायीं तरफ़ बाथ रूम में जाने का रास्ता है और दाहिनी तरफ़ बाहर के कमरे में जाने का। पर्दा उठने पर कमरे में बहुत हलका प्रकाश जान पड़ता है क्योंकि बिजली बन्द है और खिड़की में से ही बरामदे के बल्ब की रोशनी आ रही है। बल्ब और बरामदे के खम्भे का अंश खिड़की में दीख पड़ता है, जिससे मालूम होता है कि खिड़की के पीछे बरामदा है। कमरे में कोई नहीं

है। बाथरूम की ओर कुत्ते के जोर-जोर से भूंकने की फिर कुछ टकराने की आवाज़ आती है। कुछ देर बाद बदहवासी की हालत में दिलीप का प्रवेश। चुस्त पाजामा, बन्द गले का कोट, जिसके बटन ऊपर से खुले हुए हैं। हाथ में वायलिन का केस]

दिलीप : मैं कहता हूँ जनाव कि अगर आपको एक आर्टिस्ट को बुलाना था तो बाहर कुत्ता क्यों रखा और वह भी इतना खूंख़ार ! **(चारों तरफ़ देखकर)** अरे यहाँ तो कुछ भी नहीं....यह कैसी दावत है ? प्रिंसिपल साहब ने कहाँ फाँस दिया ? **(पलंग पर बैठता हुआ)** जब कुत्ता ऐसा है तो मालिक कैसे होंगे !

[दाहिनी ओर से चन्दू का प्रवेश। पोशाक बेरा की, यानी पाजामा, अचकन, कमरबन्ध और पगड़ी कंधों पर झाड़न। आते ही स्विच दबाते समय दिलीप की ओर पीठ करके खड़ा होता है तभी दिलीप खखारता है और चन्दू चौंक कर घूमता है।]

चन्दू : कौन ?

(घूमकर देखता है।)

दिलीप : **(पलंग पर से उठता हुआ)** मैं ही हूँ !—मैं !

चन्दू : लेकिन...लेकिन आपको मैंने पहले इस घर में नहीं देखा। आप...

(दिलीप बात काट देता है और बराबर ऐसा करता है।)

दिलीप : तुम इस घर के नौकर हो न ?

चन्दू : जी, बेरा हूँ !.......लेकिन आप......

दिलीप : आज यहाँ छोटी-सी दावत है न ?

चन्दू : जी दावत है तो ! लेकिन आपको......

दिलीप : तो कहाँ है वह दावत ?

चन्दू : गोल कमरे में। यह तो पलंग-कमरा है।...लेकिन... लेकिन आप हैं कौन, आपका नाम, आपका......

दिलीप : वाह भई ! तुम्हारे मालिक का खूंख़ार कुत्ता भी नाम पूछता है और तुम भी ! उससे बचकर तो पलंग-कमरे में घुसा पर तुमसे बचना मुश्किल है।

चन्दू : लेकिन यह तो बताइए कि आप कौन......

दिलीप : उफ़ ! तुमने तो नाक में दम कर दिया !...देखते हो यह वायलिन ?

चन्दू : बाजा ?

दिलीप : हाँ बाजा !.....सुनो दोस्त मैं बाजा बजाता हूँ, तुम हाजिरी बजाते हो !...हम तुम दोनों आर्टिस्ट हैं।....मिलाओ हाथ इसी बात पर।

(चन्दू का हाथ पकड़ कर हिलाता है।)

नेपथ्य से : बेरा, बेरा !

चन्दू : ग़ज़ब हो गया ! अरे हाथ छोड़िए ! साहब आवेंगे तो कहेंगे, अपने यारों को बेडरूम में बुलाता हूँ !

दिलीप : तो मुझे गोल कमरे में पहुँचाओ न !

नेपथ्य से : बेयरा, बेयरा !

(किसी के आने की पद-चाप)

चन्दू : आया हुजूर !...अच्छा चलिए इधर से !

दिलीप : खिड़की में से ? यह भी ठीक ! (**खिड़की की तरफ़ बढ़ता हुआ**) जानते हो दोस्त, समाज किसके काबू में आता है ?

(खिड़की के उस पार कूद जाता है।)

चन्दू : (वायलिन केस पकड़ाते हुए ।) यह लीजिए अपना बाजा !

दिलीप : (झांकता हुआ) समाज उसके आगे झुकता है जो खिड़की की राह कूदकर उसे दबा सके । जिसने दरवाजा पकड़ा, वह तो उसका गुलाम है, गुलाम ! समझे?

(गायब हो जाता है ।)

चन्दू : अजब आदमी है !

[खिड़की बन्द करता है । प्रवीण का प्रवेश । सूट पहने है, शक्ल सूरत में भव्य, बातचीत करते समय दोनों हाथ मलने की आदत है ।]

प्रवीण : कौन अजीब आदमी है जी बेयरा ?....आओ उर्मिला, तुम्हारी मुलाकात इस घर के स्तम्भ से कराऊँ !

(उर्मिला का प्रवेश । सुन्दर, इकहरा, प्रफुल्ल बदन)

-- : यह है मेरा बेयरा !

चन्दू : सलाम हुजूर !

उर्मिला : सलाम !

प्रवीण : काम अच्छा करता है और उम्मीद है आगे भी करेगा !

उर्मिला : ए बैचलरस बियरर ! (दोनों हँसते हैं) क्या नाम तुम्हारा ?

चन्दू : चन्दू !

प्रवीण : अच्छा, चन्दू ! गोल कमरे में जाकर देखो, अगर कोई बाबू म्यूजिक कालिज से आये हों तो उनसे कहना कि मेहमानों के आते ही कुछ चीज़ शुरू कर दें ।

चन्दू : (प्रश्न सूचक मुद्रा) चीज़ शुरू कर दें ?

प्रवीण : हाँ, गाना-बजाना शुरू कर दें !

चन्दू : बजाना !....बाजा !...बाजा..तो..वह...बाबू...

प्रवीण : हाँ, और देखो खाने की मेज़ को ठीक वैसे तैयार कर दो जैसे मैंने बताया है । समझे ?

चन्दू : हुजूर !

(प्रस्थान)

उर्मिला : देखती हूँ बड़ी तैयारियाँ हैं । मैंने तो समझा था मुझे ही डिनर पर बुलाया है !

प्रवीण : उर्मिला यह डिनर ही नहीं, 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' भी है ।

उर्मिला : न बाबा ! कालेज की इन्ट्रोडक्शन नाइट मुझे अब भी याद है !

प्रवीण : वह नहीं ! तुम्हें इस शहर में आये एक ही हफ्ता हुआ है ! सोचा तुम्हें आज अपने दोस्तों से ही मिला दूं !

उर्मिला : मुझे पहले से बता दिया होता तो......

प्रवीण : तो क्या ?

उर्मिला : साड़ी तो बदल आती !

प्रवीण : उसके लिए सब इन्तज़ाम है ! यह देखो उर्मिला !

[आलमारी खोलकर एक केस निकालता है, उसे खोलकर एक कीमती साड़ी दिखाता है ।]

उर्मिला : ओ ! हाऊ लवली !!

प्रवीण : और यह पेटीकोट और ब्लाउज़ और ब्रेसिया !

उर्मिला : प्रवीण तुम बड़े नटखट हो !

प्रवीण : तुम तो जानती ही हो कि मेरा कोई काम अधूरा नहीं होता । देखो यह नेकलेस इस साड़ी के साथ कैसी जायगी ?

(नेकलेस निकालता है ।)

उर्मिला : यह सब मेरे लिए ?

प्रवीण : यह भी तो.........

उर्मिला : पौडर बौक्स ! और हर एक चीज़ मेरे मनचाहे रंग की ! !

प्रवीण : रंग ? तुमने बैठक के पर्दे और सोफ़ा सेट पर ग़ौर किया ?

उर्मिला : हाँ, सभी गुलाबी रंग के हैं । और देखती हूँ कि इस बेडरूम में आसमानी की ही बहार है ! प्रवीण, मुझे न मालूम था तुम्हारे अन्दर कलाकार भी मौजूद है !

प्रवीण : जब मेरी प्रियतमा आर्टिस्ट हो तो मैं इतना भी न करूँ ? देखो, दीवारों पर मैंने इतनी सब जगह छोड़ दी है तुम्हारी पेंटिंग्ज़ के लिए ! सोच लो कहाँ कौन सी तस्वीर टँगेगी ।

उर्मिला : जान पड़ता है शीघ्र ही तुम्हारी भी पेंटिंग्ज़ यहाँ टँगेगी !

प्रवीण : मैं और पेंटिंग ! (**हँसता है**) लेकिन उर्मिला एक तरह से तुम्हारा कहना ठीक है ! मैं भी आर्टिस्ट हूँ. . .दी आर्टिस्ट इन लाइफ (**खिड़की के सहारे खड़ा होता है और तैयार किये हुए भाषण के ढंग से बोलता है**) संगतराश की तरह मैं नाप-जोखकर, चुन-चुनकर अपने जीवन का डिज़ाइन तैयार करता हूँ, मेरा हर एक दिन जौहरी की माला की लड़ियों की तरह है, साफ सुथरा; मैं माली की तरह अपने चारों ओर फूल-पौधों को तराश कर, सँवार कर, रखना पसन्द करता हूँ. . .मैं. . .

उर्मिला : उफ्फोह, आज तुम बोली भी अनोखी बोल रहे हो ! संगतराश, जौहरी, माली ! ! (**हँसती है**) जान

पड़ता है यह मेरी भी इन्ट्रोडक्शन नाइट है और तुम्हारी भी !

प्रवीण : (**वही स्वर**) शायद तुम ठीक कह रही हो, उर्मिला ! अभी तक शायद मैं तुम्हारे लिए कुछ पहेली-सी बना रहा था ! लेकिन......

उर्मिला : हम दोनों बराबर एक दूसरे के लिए पहेली-सी बने रहें और रोज़ नयी पहेलियाँ सुलझाते रहें, इसी में तो आकर्षण है !

प्रवीण : शादी के बाद भी, उर्मिला ?

उर्मिला : तभी तो हमारा विवाहित जीवन हरा-भरा और सरस रहेगा !

प्रवीण : हूँ ! (**रुक जाता है**) लेकिन शादी के पहले एक दूसरे को समझ लेना भी ठीक ही है !

उर्मिला : जिस दिन समुद्र के किनारे हम दोनों ने एक दूसर का हाथ पकड़ा, उसी दिन हम एक दूसरे को समझ गये थे न ?

प्रवीण : उर्मिला, जिस तरह मैं तुम्हारा अनन्य प्रेमी रहा हूँ, वैसे ही मैं एक आदर्श पति बनना चाहता हूँ !

ऊर्मिला : कैसे तुम्हें बताऊँ कि मैं अपने को कितनी भाग्यवती समझती हूँ ?

प्रवीण : बीसियों किताबों में पढ़ चुका हूँ कि पति की स्वार्थपरता और नासमझी के कारण वैवाहिक जीवन असह्य हो जाता है। छोटी-छोटी बातों की विषमता सारे दाम्पत्य-जीवन को विषमय बना देती है ! सो मैं वैसा अवसर ही न आने दूंगा उर्मिला !

उर्मिला : यदि ऐसे अवसर आयेंगे, तो भी हम लोगों को कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती !

प्रवीण : बचपन से ही मैंने यह सबक सीखा कि जो समाज के ढांचे में अपने को ढाल सके सफलता उसी की है ! समाज फूल है तो कुटुम्ब फल ! पति और पत्नी के उत्तरदायित्व के लिए मैंने अपने को ट्रेन किया है !

उर्मिला : (कुछ मुस्कराकर) सुनूं तो कौन सी वह सुन्दरी थी जिससे तुम्हें ट्रेनिंग मिली ?

(हँसती है ।)

प्रवीण : मज़ाक न करो उर्मिला ! जब कभी मैं जीवन के आदर्श की सतह पर से बातें करता हूँ । तब मज़ाक मुझे आँख की किरकिरी-सा लगता है !

उर्मिला : सॉरी प्रवीण, वेरी सॉरी !

प्रवीण : लेकिन इस बहाने मुझे एक महत्वपूर्ण बात कहने का मौका मिला। दाम्पत्य जीवन की सब से बड़ी जिम्मेवारी यही है कि पति अपने प्रति पत्नी का विश्वास कायम रख सके ! मैं तुम्हें कभी शिकायत का मौका न दूंगा उर्मिला !

[बाहर से वायलिन पर अत्यन्त सुन्दर, बहार रागिनी की ध्वनि]

उर्मिला : यह बाहर से वायलिन की आवाज़ कैसे आ रही है ?

प्रवीण : मैंने सोचा, पार्टी में कुछ संगीत भी रहे। सो, म्यूज़िक कालिज के प्रिंसिपल से एक आदमी को भेजने के लिए कह दिया था। वही होगा। (**खिड़की खोलता है। स्पष्ट और सुमधुर बहार रागिनी का स्वर**) जान पड़ता है सब लोग आ गये !

उर्मिला : बड़ा सुन्दर वायलिन बजा रहा है !

प्रवीण : तुम्हें क्लासिकल संगीत पसन्द है न ? मैं तो उसका सिर-पैर कुछ जानता नहीं हूँ, लेकिन तुम्हारे लिए तरह-तरह के रिकार्ड मंगा कर रख रहा हूँ...फैयाज़ खाँ, हीराबाई बड़ोदकर, रविशंकर वगैरह, वगैरह !

उर्मिला : प्रवीण मुझे कभी-कभी लगता है......

प्रवीण : क्या ?

उर्मिला : लगता है कि क्या मैं तुम्हारे योग्य भी हूँ !

प्रवीण : योग्य..........

[वायलिन बन्द हो जाता है और कुछ खटपट की आवाज़ आती है ।]

-- : हैं ! यह वायलिन एक साथ बन्द कैसे हो गया ? और यह आवाज़ ! कुछ गड़बड़ जान पड़ता है ! चलूं देखूं !

उर्मिला : मैं भी चलूं ?

प्रवीण : ऐसे नहीं, इस कोने में जो पर्दा है न, उसके पीछे जाकर यह नयी साड़ी और ज़ेवर पहन लो । तभी अपने दोस्तों से तुम्हारा परिचय कराऊंगा ।

(बैठक से भगदड़ की आवाज आती है ।)

-- : देखूं, क्या मामला है !

[प्रवीण का प्रस्थान । उर्मिला कुछ पसोपेश में कुछ सोचती-सी साड़ी, ब्लाउज, जेवर उठाकर देखती है । फिर पर्दे के पीछे चली जाती है । थोड़ी देर बाद बरामदे में कुछ हलचल और फिर खिड़की में से दिलीप कुछ परेशानी में झांकता नज़र पड़ता है । देखता है कि कमरे में कोई है तो नहीं । फिर कूदकर अन्दर आ जाता

है और खिड़की बन्द कर लेता है। फिर दाहिना दरवाज़ा बन्द कर सिटकिनी लगा देता है।]

दिलीप : (**दबे स्वर में**) बस अब इधर बाथरूम की तरफ़ से रफू-चक्कर हो जाता हूँ।

[बाथरूम की ओर बढ़ता है, ज्योंही पर्दे के बराबर से निकलता है एक साड़ी उसके ऊपर आ पड़ती है।]

दिलीप : ऐं साड़ी ! (**ब्लाउज़ आ पड़ता है**) यह क्या, ब्लाउज़ ? हे परमात्मा ! अब खैर नहीं ! देखूं, इस पर्दे के पीछे कौन है

[पर्दा थोड़ा हटाकर झांकता है। उर्मिला चीखती है। पीछे हट जाता है।]

दिलीप : आई बेग योर पार्डन ! क्षमा कीजिए देवी जी !

[सकपका कर बाथरूम की तरफ़ जाता-जाता रुक जाता है। उर्मिला थोड़ी देर में गुस्से में बाहर आती है।]

उर्मिला : आप आदमी हैं या हैवान ? देखते नहीं हैं कि एक महिला कपड़े बदल रही है और आप अन्दर घुसे चले आ रहे हैं ?

दिलीप : माफ़ कीजिएगा, मैंने समझा कि यह बेचलर का कमरा है !

उर्मिला : आखिर आप हैं कौन ?

दिलीप : अगर मैं पूछूं कि आप कौन हैं तो गुस्ताखी तो नहीं होगी ?

उर्मिला : (**अनसुनी-सी**) जी ?

दिलीप : बात यह है कि मैंने सुन रखा था कि इस घर के मालिक कुंआरे है ! मुमकिन है मैंने ग़लत सुना हो !

उर्मिला : (**अवहेलना भरे स्वर में**) जी ! (**दरवाजे के करीब जाकर धक्का लगाती हुई**) यह दरवाज़ा आपने बन्द किया है ?

दिलीप : जी ! उसे खोलिए मत ! (**फिर उसी स्वर में**) तो आप लोगों का गंधर्व-विवाह......

उर्मिला : (**सरोष**) जी नहीं ! न हमारा विवाह हुआ है, न गंधर्व विवाह ! आपसे मतलब ?

दिलीप : ठीक !

(**गहरी साँस लेता है ।**)

उर्मिला : इसके क्या मानी ?

दिलीप : यही कि अब मुझे इतमीनान है !

उर्मिला : आपका इतमीनान तो अभी ठिकाने किये देती हूँ ! (**खिड़की की ओर जाकर**) यह खिड़की भी आपने ही बन्द की है ?

(**खोलने का प्रयत्न करती है ।**)

दिलीप : हैं, हैं, उसे न खोलिए !

उर्मिला : खिड़की को भी न खोलूं, दरवाजे को भी न खोलूं, (**रुककर**) क्यों ?

दिलीप : इसलिए कि जहाँ आपने इन्हें खोला, वहाँ मैं बाथरूम की राह से रफ़ू चक्कर हुआ ! और मेरे यहां से चले जाने से आपका मतलब पूरा नहीं होगा !

उर्मिला : मेरा मतलब ?

दिलीप : आपका तो मतलब यही है न कि मुझ मि०—क्या नाम उनका—मि०—

उर्मिला : प्रवीण चन्द्र !

दिलीप : जी, मुझे मि०-प्रवीण चन्द्र के हवाले कर दें, यही न ?

उर्मिला : जितनी देर से आप बातों में उलझे हैं, उतनी देर में आप यहाँ से भाग सकते थे !

दिलीप : आपकी शंका ठीक है ! **(बैठता हुआ)** मगर असल बात यह है कि मैं यहाँ से जाना नहीं चाहता !

उर्मिला : हूँ ! इसके बाद आप कहेंगे कि आप मुझ से प्रेम करते हैं ! ......

दिलीप : इतनी जल्दी नहीं मिस......

उर्मिला : उर्मिला !

दिलीप : जी ! मिस उर्मिला इतनी जल्दी नहीं ! मुझे थोड़ा वक्त तो दीजिए !

उर्मिला : आप न सिर्फ बदतमीज़ हैं, बल्कि अपने आपको कुछ समझते भी हैं !

दिलीप : यदि आपने भी मेरी तरह एक-एक करके चार मूर्खों के मुंह पर तड़ातड़ चार चपत लगाये होते तो आप भी अपने आपको कुछ समझतीं !

उर्मिला : चार मूर्ख कौन ?

दिलीप : आपके मि० प्रवीण चन्द्र के चार दोस्त, जो उनकी बैठक में विराजमान थे !

उर्मिला : (**आश्चर्य से**) आपने उनको चपत लगाये ?....आप हैं कौन मि०––

दिलीप : मिस्टर दिलीप कुमार ! सुनिए मिस...उर्मिला (**रुककर लाचारी के स्वर में**) लेकिन क्या फ़ायदा ? कहीं आपके भी कान उन्हीं लोगों की तरह संगीत के लिए बहरे हुए......कहीं...

उर्मिला : संगीत !...तो क्या आप ही थोड़ी देर हुए वायलिन पर बहार बजा रहे थे ?

दिलीप : (**आवेशपूर्ण उत्साह से उर्मिला का हाथ पकड़कर मानो उससे पहली जान पहचान हो**) वायलिन पर बहार !...सच ? तो क्या सच आप राग-रागिनियाँ समझती हैं ? उफ़्फोह ! आपने अब तक बताया क्यों नहीं ?

उर्मिला : (**हाथ छुड़ाते हुए**) अगर बता देती तो आप क्या करते ?

दिलीप : क्या करता ? कह नहीं सकता ! शायद अपनी अधूरी रागिनी को पूरी करता ! सच कहता हूँ मिस उर्मिला, उस रागिनी को तोड़ते हुए मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था ! लेकिन मजबूरी ! मैं तो बहार की मौजों में बहा जा रहा था, समाँ बंधने वाला था, पर वे चार अहमक़ बातें किये जा रहे थे, लगातार वे ही छिछली ओछी बातें, वही बेहूदेपन की हँसी ! और मुझसे कला की यह बेक़दरी देखी न गई ! वायलिन एक तरफ़ रखकर उन लोगों के पास गया और बिना कुछ पूछे और कहे, मैंने चार तमाचे चारों के मोटे-मोटे गालों पर रसीद किये ! कहिए ठीक किया न ?

उर्मिला : (**हँसी दबाते हुए**) ताज्जुब है कि उन लोगों ने आपको घेर कर वहीं आपकी खबर नहीं ली !

दिलीप : जब तक कि वे सम्हलें, मैं चम्पत हो चुका था ! वे मेरे पीछे बाहर की ओर भागे और मैं उन्हें चकमा देकर चला आया इधर, इस इरादे से कि पिछवाड़े से रफूचक्कर हो जाऊँगा ! लेकिन आपने तो मेरा प्रोग्राम ही ढेर कर दिया !

[**पलंग पर रखी हुई एक पुस्तक उठा लेता है और उसके पन्ने उलटने लगता है । क्षणिक मौन, जिसमें**

उर्मिला अनायास दिलीप की ओर पल भर की ईषत् मुस्कानपूर्ण दृष्टिपात करती है। लेकिन तुरन्त ही सम्हल कर, जैसे कुछ याद आया हो—]

उर्मिला : अच्छा, तो अब आप जा सकते हैं, क्योंकि मुझे लगता है कि वे इधर ही आ रहे हैं और तब मुझे दरवाज़ा खोलना ही होगा !

दिलीप : वे ?

उर्मिला : मि० प्रवीण चन्द्र !

दिलीप : मि० प्रवीण चन्द्र ! ओह ! मिस उर्मिला, जिस व्यक्ति के दोस्त ऐसे वहशी हैं कि उनके सामने एक मधुर और कलापूर्ण रागिनी बजे और वे सुनना तो अलग, चुप भी न रहें, मेढ़कों की भाँति टर्र. .टर्र करते रहें....ऐसे व्यक्ति के साथ आपको अकेला छोड़ दूं ? नामुमकिन !...ऐसे व्यक्ति की तो छाया भर आपके कलाप्रिय हृदय की पंखुड़ियों को कुम्हला देगी, टुकड़े-टुकड़े कर देगी !

उर्मिला : मि० दिलीप कुमार, शायद आप नहीं जानते कि मि० प्रवीण चन्द्र से शीघ्र ही मेरी शादी होने वाली है।

दिलीप : शादी ! आपकी, (**रुकता है, फिर उर्मिला की ओर देखता है। मानो उस दृष्टि में उसे किसी नूतन रहस्य का आभास मिला हो, ऐसी मुस्कराहट के साथ**) हाँ, यदि आपकी उनके साथ शीघ्र ही शादी होने वाली है तब तो मेरा और आपका अकेले बन्द कमरे में उनके द्वारा पाया जाना शायद ठीक न होगा !...अच्छा तो मैं चलता हूँ—

उर्मिला : (**सहसा मानो आग्रह के साथ**) ...आ...आप... सच ही जा रहे हैं ?

दिलीप : जी ! नमस्ते !

उर्मिला : (**कुछ रुक कर**) नमस्ते !

[दिलीप का बाथरूम की ओर से प्रस्थान । उर्मिला उसको जाते हुए देखती है और जब उसकी पीठ मुड़ जाती है तब मानो उसको रोकने के लिए इशारा-सा करती है, मगर हाथ उठा ही रह जाता है ! कुछ देर तक ध्यान मग्न ! फिर उठती है और खिड़की खोलती है ! इसी समय बाईं ओर से दिलीप का पुनः प्रवेश]

दिलीप : मिस उर्मिला !

उर्मिला : (**सिर घुमा कर**) आप फिर आ गये ?

दिलीप : देखिए, एक तो इसी तरफ़ प्रवीण बाबू का खूंखार कुत्ता घूम रहा है ! दूसरे, जब मेरी जान से भी प्यारी वस्तु यहाँ रह गई तो जाना फ़िजूल था !

उर्मिला : (**सस्मित**) सुनूं तो कौन है आपकी सब से प्यारी वस्तु ?....

दिलीप : (**बनावटी हिचकिचाहट से**) मेरा मतलब....मेरा मतलब तो.....मेरा मतलब तो महज़...महज़ अपने वायलिन से था !

उर्मिला : (**निराश स्वर**) ओ !

दिलीप : भला मिस उर्मिला, एक म्यूज़िशियन अपने साज़ को बेक़दरों के घर में कैसे छोड़कर जा सकता है ?

(बाहर से कोई दरवाज़े पर दस्तक देता है ।)

उर्मिला : (**चिन्तित स्वर**) आपका वायलिन आपको भी ले डूबेगा और मुझे भी ! सुनिए, प्रवीण बाबू आ गये !

दिलीप : आप दरवाज़ा खोल दीजिए; मैं जा रहा हूँ !... (**जाते-जाते रुक जाता है**) लेकिन एक बात है !

उर्मिला : जल्दी कीजिए !!

दिलीप : थोड़ी देर के लिए इस पर्दे के पीछे खड़े होकर ज़रा प्रवीण बाबू की आवाज़ तो सुन लूं। फिर उधर ही से बाथरूम के रास्ते से बाहर हो जाऊँगा ? आपको कोई एतराज़ तो न होगा !

उर्मिला : आप कायर भी हैं !

(फिर दस्तक "उर्मिला, उर्मिला !")

दिलीप : (**हँसता हुआ**) यह तो बाद में पता चलेगा कि कौन कायर है (**पलंग वाली पुस्तक हाथ में लेकर उसी पर्दे के पीछे चला जाता है, जिसके पीछे उर्मिला ने कपड़े बदले थे।**)

उर्मिला : खूब !

(प्रवीण का प्रवेश।)

प्रवीण : उर्मिला, मुझे क्षमा करो ! मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ कि इतनी देर तक तुम्हें अकेला छोड़कर मकान के बाहर चला गया ! क्या कहूँ अजब गड़बड़झाले में पड़ गया !

उर्मिला : मैंने तो समझा कि कालिज की ही तरह यहाँ भी 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' होने वाली है !

प्रवीण : अरे, भई, एक पागल की हरकतों ने मेरा सारा प्रोग्राम चौपट कर दिया !

उर्मिला : पागल ?

(पर्दे की तरफ देखती है।)

प्रवीण : हाँ, म्यूजिक कालेज के प्रिन्सिपल ने न जाने किस हैवान को वायलिन बजाने के लिए भेज दिया था ! मैंने तो अब तक उसकी शक्ल भी नहीं देखी !

उर्मिला : वायलिन तो अच्छा बजा रहा था !

प्रवीण : लेकिन उस जाहिल को क्या हक़ था कि मेरे चारों दोस्तों के मुंह पर तमाचे लगाकर चलता बने ? उर्मिला, मेरे चारों दोस्त नाराज़ होकर चले गये ! मैं उस कम्बख्त के पीछे-पीछे भागा, लेकिन वह ऐसा ग़ायब हुआ कि दूर तक नामोनिशान भी नहीं !

उर्मिला : जब आपने उसकी शक्ल ही नहीं देखी तो ढूंढ कैसे पाते ?

प्रवीण : उर्मिला, मैं उस वक्त बहुत परेशान था (**ऊँचे स्वर में**) बेरा...बेरा...

चन्दू : (**नेपथ्य से**) आया हुज़ूर !

(बेरा का प्रवेश)

प्रवीण : कुछ पता लगा ?

चन्दू : नहीं हुज़ूर ! बहुत तेज़ भागा मालूम देता है ! लेकिन अपना बाजा छोड़ गया है, ले आऊँ ?

प्रवीण : अबे अहमक, मैं बाजे को क्या करूँगा, गधा ! (**गुस्से पर लगाम लगाता हुआ उर्मिला से**) मुझे माफ़ करो, मैं इस वक्त आपे में नहीं हूँ उर्मिला !

उर्मिला : कुछ दवा ले लो..एसप्रीन वगैरह !

प्रवीण : दवा से ज़्यादा मुझे मानसिक दवा की ज़रूरत है ! (**पलंग पर कुछ खोजता है**) बेरा, वह किताब कहाँ गई ?

चन्दू : वही जो आप रोज़ सवेरे पढ़ते हैं ? यहीं रखी हुई थी हुज़ूर !

(पलंग पर खोजता है ।)

प्रवीण : देखो उधर पर्दे के पीछे तो नहीं पड़ी हुई है ?

[चन्दू पर्दे की ओर बढ़ता है । उर्मिला झट से उसे मना करती हुई बोलती है ।]

उर्मिला : नहीं, नहीं, किताब वहाँ नहीं है।

(चन्दू रुककर उसकी ओर देखता है।)

प्रवीण : तो क्या तुमने वह किताब देखी है ?

उर्मिला : हाँ हाँ...वही न ? यहीं पड़ी हुई थी। ए...ए...क्या नाम है उसका ..?

[सहसा पर्दे के पीछे से दिलीप निकलता है, हाथ में पुस्तक लिये हुए। चेहरे पर मुस्कराहट]

दिलीप : पुस्तक का नाम है, "सफल जीवन की कुंजी" ! माफ़ कीजिएगा, जनाब, आपकी यह गीता मैंने आपके पलंग पर से उठा ली थी...बड़ी लाजवाब चीज़ है ! आप शायद उसके तीसरे अध्याय का ख्याल कर रहे हैं ?...लीजिए आपके काम की चीज़ पढ़कर सुनाये देता हूँ। (**पढ़ता है**) 'विवाहित जीवन में पुरुष को अपने मिज़ाज पर काबू रखना बहुत ज़रूरी है क्योंकि परेशान मिज़ाज वाला पुरुष अपनी स्त्री को न तो सन्तुष्ट कर पाता है और न उस पर ठीक तौर पर काबू रख सकता है। जैसा हम पहले कह आये हैं, विवाहित जीवन भी एक कला है। पुरुष को संगतराश की तरह नाप-जोखकर, चुन-चुन कर अपने जीवन का डिज़ाइन तैयार करना है, उसका हर एक दिन जौहरी की माला की लड़ियों की तरह है, माली की तरह उसे अपने...'

उर्मिला : अरे,...ठीक यही शब्द तो प्रवीण बाबू ने मेरे सामने आज कहे थे !

चन्दू : **(जो अब तक सकपका कर सब कुछ देख सुन रहा था)** अरे हुज़ूर, यह तो वही आदमी है !

प्रवीण : कौन ?

दिलीप : ठहरो, दोस्त, मैं खुद ही बताये देता हूँ ! बात यह है प्रवीण बाबू कि मैं और आपका नौकर पुराने दोस्त हैं, फेलो आर्टिस्ट्स !

प्रवीण : तो यह किताब तुम्हारे हाथ में कहाँ से आई ? तुम ...तुम आये कहाँ से ? उर्मिला, तुम्हें मालूम है ?

चन्दू : अरे, हुजूर, यही तो वह बाजे वाला है ।

प्रवीण : बाजे वाला ?

दिलीप : (**चन्दू से**) उफ्फोह, दोस्त ! तुमने तो सारा मजा ही किरकिरा कर दिया ! मैं तो वही बात बताने वाला था, लेकिन ज़रा तकल्लुफ के साथ, जरा कलापूर्ण ढंग से ! (**प्रवीण बाबू से**) प्रवीण बाबू, मैं ही आज रात का हीरो हूँ । मैंने ही आपके दोस्तों के मोटे-मोटे गालों पर चार भरपूर तमाचे लगाये हैं और मुझे खुशी है कि इस तरह मैंने जहालत के खिलाफ खूबसूरती की ओर से बगावत का झंडा उठाया ! क्यों, ठीक है न मिस उर्मिला ? आप तो पहले से ही मेरी बात को मानती हैं !

प्रवीण : पहले से ? तो क्या तुम इस शख्स को पहले से जानती थीं उर्मिला ?

उर्मिला : (**कुछ रुककर**) हाँ, मैं इस शख्स को बहुत पहले से जानती हूँ, इतना पहले से कि यह भी याद नहीं पड़ता कि कब मैं इन्हें नहीं जानती थी !

दिलीप : (**विस्मित**) ऐं ?

उर्मिला : (**दिलीप की ओर विजय भाव से देखती हुई**) जी !

[**प्रवीण इस आघात से मानो आहत हो निश्शब्द**

हो जाता है । थोड़ी देर के लिए सब लोग चुप हैं । फिर इस अस्वाभाविक शान्ति **को तोड़ता हुआ चन्दू खखारता है ।**]

चन्दू : हुजूर, इनका बाजा ले आऊँ ?

प्रवीण : (**मानो जागा हो**) ऐं, बाजा ! हाँ, इनका वायलिन ले आओ । (**चन्दू जाता है**) उर्मिला, क्या मैं एक सवाल तुमसे पूछ सकता हूँ ? (**उर्मिला चुप**) एक ऐसे विचित्र व्यक्ति से इतनी पुरानी जान-पहचान होने पर भी तुमने मुझसे इनका अब तक ज़िक्र भी करना मुनासिब नहीं समझा ! सो क्यों ?

उर्मिला : अगर मैं तुम्हें यह बता भी देती तो क्या इससे तुम्हारे निश्चय में कोई अन्तर हो जाता ?

दिलीप : सवाल यह नहीं है उर्मिला देवी ! सवाल यह है कि इस किताब --"सफल जीवन की कुंजी"..के पाँचवें अध्याय में लिखा है कि (**पढ़ते हुए**) पुरुष और स्त्री को एक दूसरे से कोई भेद नहीं छिपाना चाहिए ।" जब आप लोगों की एक दूसरे से शादी होने वाली है तो प्रवीण बाबू आपसे यह कैसे उम्मीद कर सकते थे कि आप उनसे इस लम्बी...इतनी लम्बी जान-पहचान का ज़िक्र ही न करेंगी ? क्यों प्रवीण बाबू मैंने आपकी बात को ठीक समझा न ?

उर्मिला : (**कृत्रिम झुंझलाहट से**) जी, आप इनकी बात भी ठीक तरह से समझते हैं और मेरी भी ! यानी आप खूब हैं !

दिलीप : हँ, हँ, हँ ! उर्मिला देवी, आप तो जानती ही हैं कि स्त्री और पुरुष के जीवन को समझना मेरा एक तरह

से पेशा हो गया है ! ख़ास तौर से स्त्रियों को तो सिर से पैर तक समझे हुए हूँ !

प्रवीण : सिर से पैर तक ?

दिलीप : जी हाँ, दिल तक ही नहीं बल्कि......

उर्मिला : आखिर आपकी मंशा क्या है ?

दिलीप : मेरी मंशा ? अगर आप पूछती हैं तो उत्तर देना मुश्किल है, लेकिन अगर प्रवीण बाबू पूछते हैं तो मेरी मंशा है, अपना वायलिन लेकर मैं रवाना हो जाऊँ। अच्छा तो प्रवीण बाबू, बाहर से वायलिन लेकर मैं चलता हूँ।

(चलने को उद्यत)

प्रवीण : ठहरिए, अभी ठहरिए, और थोड़ा बैठ जाइए। (**दिलीप बैठता है**) हालांकि मुझे आपका नाम नहीं मालूम है तो भी....

दिलीप : दिलीप कुमार !

प्रवीण : मि० दिलीप कुमार, आपने मेरे दोस्तों को चपत लगा कर मुझे सख्त तकलीफ पहुँचाई, लेकिन एक तरह से आपने मेरा उपकार भी किया है।

दिलीप : उपकार ? तो क्या आप अच्छे संगीत की इज़्ज़त करने लगेंगे ?

प्रवीण : संगीत ? साहब, संगीत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं !

दिलीप : अगर मेरी वजह से कला की इज्जत करना भी आप न सीखें तो भला मैंने आपका क्या उपकार किया ?

प्रवीण : मेरा इशारा उर्मिला और मेरे सम्बन्ध की ओर है। (**उर्मिला से**) उर्मिला, जीवन में जानबूझ कर मैं जोखिम लेना पसन्द नहीं करता और—(**कुछ रुककर**)

...और मि० दिलीप कुमार के कारण एक बात साफ़ हो गई कि मेरा और तुम्हारा विवाह एक बड़े जोखिम वाला सौदा होगा !

उर्मिला : मनुष्य का तो सारा जीवन ही जोखिमों से भरपूर है।

दिलीप : लेकिन, उर्मिला देवी, इस पुस्तक यानी, "सफल जीवन की कुंजी" के छठे अध्याय, पृष्ठ छयानवे पर लिखा है (**पढ़ता हुआ**) 'याद रखो, विवाहित जीवन में जोखिम लेना फूस के छप्पर पर आतिशबाजी से खिलवाड़ करने के मानिन्द है ! ज़िंदगी का सबसे बड़ा उसूल.....'

प्रवीण : मि० दिलीप कुमार, मुझे शक होता है कि शायद आप इस बेशकीमत किताब का मखौल उड़ा रहे हैं !

दिलीप : इसे आप मखौल कहते हैं ? अरे, साहब मैं तो इसे एक ही निगाह में पढ़ गया और तभी खोज-खोजकर इसके मोती आपके सामने रख रहा हूँ !

प्रवीण : और मुझे एक और शक हो रहा है। मालूम होता है कि आप उर्मिला से प्रेम करते हैं और उर्मिला आप से !

दिलीप : (**पुस्तक के पन्ने जल्दी-जल्दी उलटता हुआ**) प्रवीण बाबू, आपकी इस अनोखी बात का तो हवाला इस किताब में कहीं नहीं मिलता, कहीं भी नहीं !

उर्मिला : आप इस किताब को इसके पुजारी को लौटा दीजिए !

दिलीप : (**चौंकने का अभिनय**) यानी...आप भी इनके संदेह को सच मानती हैं......

उर्मिला : चुप रहिए ! (**खड़ी होकर प्रवीण से**) प्रवीण, तुम समझते हो कि इस तरह मेरे मत्थे दोष मढ़कर और खुद नादान बने रहकर तुम दुनिया को धोखा दे सकोगे और विवाह के बाद मुझे हमेशा के लिए दबा कर रख

सकोगे, अपनी पवित्रता और नेकनीयती के ढकोसले के नीचे !

दिलीप : ठहरिए, ज़रा......

उर्मिला : और शायद तुम्हारी इतनी हिम्मत इसलिए भी है कि मैं एक आधुनिक और ऐशपसन्द लड़की इस साधारण म्यूज़िक मास्टर से शादी करने का तो विचार भी मन में नहीं लाऊँगी ? यही न तुम्हारी चाल है ?... लेकिन मैंने तय किया है, अभी-अभी तय किया है कि इसी शख्स के साथ शादी करूँगी, चाहे इनके पास कानी-कौड़ी भी न हो ।

दिलीप : (**शरारत भरी मुद्रा**) और मेरी भी तो मर्जी पूछ ली जाय !

उर्मिला : आप चुप रहिए !

प्रवीण : (**विनीत स्वर में मानो आवरण हट गया हो**) उर्मिला ...उर्मिला...मैं भी तो तुम से प्रेम करता हूँ ।

उर्मिला : (**हेयभाव से ।**) हूँ ! (**बैठती है**) पुराने ज़माने में कापालिक योगियों को अपनी योगसाधना पूरी करने के लिए आखिर में एक कुमारी की ज़रूरत पड़ती थी ! ऐसे ही शायद तुम्हें मेरे प्रेम की ज़रूरत है ! जीवन के किनारे से तुमने कुछ कांच के टुकड़े उठा लिये हैं, जिन्हें तुम आदर्श कहते हो और जिन्हें जोड़-जोड़कर तुम अपने लिए एक दर्पण सा बना रहे हो । क्या उस दर्पण की तुम्हारी छायामूर्ति को मैं असलियत समझूं ? तुम प्रेम करते हो, मुझ से नहीं, उस छाया-मूर्ति से जो तुम्हारा कार्टून है ! लेकिन मैं तो आदमी से शादी करना चाहती हूँ, कार्टून से नहीं !

दिलीप : उर्मिला देवी ! मैं आपको जान बूझ कर जोखिम का काम नहीं करने दूंगा। मैं तो फक्कड़ हूँ ! ज़िन्दगी मेरे लिए एक बहाव है, बस !

उर्मिला : मेरे लिए भी ! हम दोनों इस बहाव में बहेंगे, तिनकों की तरह नहीं, नौकाओं की तरह जो लहरों पर आरूढ़ होती हैं !

प्रवीण : मेरी बर्दाश्त की सीमा गुज़र चुकी है ! उर्मिला, मेरे मकान में मेरी ही भेंट की हुई साड़ी और जेवर पहन कर, तुम मेरे ही सामने इस गलियों में भटकने वाले व्यक्ति से साँठ-गाँठ लगा रही हो !

दिलीप : यह क्या, प्रवीण बाबू ? आप और इस तरह जामे से बाहर ? आपने तो इस (**किताब उठाता हुआ**) किताब की लुटिया ही डुबा दी !

उर्मिला : जेवर ? (**नेकलेस निकालती हुई**) यह लो अपना नेकलेस ! (**पलंग पर फेंकती है**) और...

दिलीप : ठहरो उर्मिला ! (**मुस्कराता हुआ**) साड़ी बाद में भिजवा देना !

प्रवीण : मैं कहता हूँ—

(**चन्दू का प्रवेश।**)

चन्दू : हुजूर...वे लोग बाजा लाने नहीं देते !

प्रवीण : कौन लोग ?

चन्दू : चारों मेहमान ! वापस आ गये हैं और कहते हैं.....

(**अटक जाता है।**)

प्रवीण : बात पूरी करो चन्दू !

चन्दू : कहते हैं कि बाजे वाले बाबू की अक्ल दुरुस्त किये बिना हम यह बाजा नहीं छोड़ेंगे !

प्रवीण : (**मानो सिकन्दर पोरस से बात कर रहा हो**) कहिए मि० दिलीप कुमार, क्या ख्याल है ? न्याय की माँग मानकर आप को उन लोगों के हवाले करूँ या--

उर्मिला : या ?

दिलीप : उर्मिला के नाम पर तरस खाकर छोड़ दूं ? यही न कहने वाले थे प्रवीण बाबू ? तो साहब आपके तरस का यहाँ कोई भूखा नहीं है ! आप जाइए और अपने अरमान पूरे कीजिए ! बन्दा हाजिर है !

प्रवीण : (**तैश में**) यह बात है !...बाद में न झींकना उर्मिला कि तुम्हारे प्रेमी को बचाया नहीं ! लेकिन लातों के भूत बातों से नहीं मानते ! मेरे ही घर में और यह शेखी...

[**तेज़ी से जाता है, चन्दू भी पीछे-पीछे उन दोनों की तरफ़ देखते हुए जाता है ।**]

दिलीप : आ गये न अपनी असलियत पर ! कच्चा रोगन कब तक ठहरेगा ?

उर्मिला : (**चिन्तित स्वर**) लेकिन....लेकिन अब क्या होगा ?

दिलीप : मामला बेढब है !....वे पाँच और मैं अकेला !... हड्डी पसली का पता नहीं रहेगा !

उर्मिला : (**हाय री, नारी !**) मुझे डर लग रहा है !

दिलीप : सामने के दरवाज़े से वे लोग आ रहे हैं ! बाथरूम की तरफ़ खूंखार कुत्ता--

उर्मिला : (**भयातुर**) वे लोग आ रहे हैं...ओह !

[**दिलीप के पास सट कर खड़ी हो जाती है और उसकी बांह पकड़ लेती है ।**]

दिलीप : बस एक ही रास्ता है ! (**उर्मिला की बांह पकड़ कर खिड़की की तरफ़ ले जाता हुआ**) चलो, उर्मिला !

उर्मिला : कहाँ ?

दिलीप : खिड़की की राह ! (**खिड़की खोलकर उर्मिला को सहारा देकर खिड़की के पार उतारता हुआ**) जल्दी चलो !

(**स्वयं खिड़की के पार उतरता है।**)

उर्मिला : (**हँसते हुए**) मैंने ठीक कहा था।.....

(**दोनों अब खिड़की के उधर हैं।**)

दिलीप : कि मैं कायर हूँ (**हँसी**) लेकिन क्या रुक्मिणी ने कृष्ण को कायर कहा ! या संयोगिता ने पृथ्वीराज को ? (**फिर हँसकर**) चलो !

[**दोनों की बातचीत की आवाज धीमी होती जाती है, क्योंकि वे चले जा रहे हैं और कमरा खाली है।**]

उर्मिला : आपका वायलिन ! जान से प्यारा !!

दिलीप : वायलिन ! (**प्रसिद्ध गीत के स्वर में**) तुम हो मेरे संग, वीणा है मेरे संग——

उर्मिला : (**उसी तान में**) "आगे बढ़ा कदम !

[**दोनों हँसते हुए गायब हो जाते हैं और उस तरफ़ हँसी की प्रतिध्वनि गूंजती-सी जान पड़ती है !**]

(**पर्दा गिरता है।**)

———

कबूतरखाना

पात्र

कंचन

रतन

[एक मध्यवर्ग के घर की बैठक, जिसे नये फैशन की भाषा में गोल कमरा कह सकते हैं ।

कमरे की सजावट, फर्नीचर और उपादानों की फेहरिस्त देना बेकार है, क्योंकि आप अनुमान कर ही सकते हैं। दूसरे, शायद आप यह जानने के लिए बेकरार होंगे कि कमरे में बैठा कौन है ?

आपकी बेकरारी उचित ही है, क्योंकि कमरे में एक सुन्दरी बैठी है और उम्र भी उसकी २५ वर्ष से कम ही है ।

नये फैशन की पोशाक और भाव-भंगिमा, लेकिन अधिक नहीं, कुछ संयम के साथ, मानो बढ़ती नदी ने अपनी सीमा पहचानी हो।

सोफे के एक किनारे में बैठी हुई वह किस आकार के शरीर के लिए स्वेटर बुन रही है, यह इतने फासले से कहना कठिन है, लेकिन आँखें और अंगुलियाँ ऊन पर हैं । पर कान ?

आहट ?

वह पहचानी-सी पग-ध्वनि, वह परिचित-सी

एक डिब्बा लिये आता है। डिब्बा एक हाथ लम्बा, लेकिन मुश्किल से छः इंच चौड़ा होगा और उसमें तीन खाने हैं। ढकना नहीं है, इसलिए डिब्बे की शक्ल दफ्तरों में पाये जाने वाले 'रैक' की तरह है जिसमें अफ़सर लोगों के लेटर पैड, लिफ़ाफ़े इत्यादि रखे जाते हैं। चपरासी उसे कालीन पर रतन के सामने रखता है।]

रतन : हाँ, यहीं रख दो। (**कंचन की तरफ गर्वभरी दृष्टि से देख कर**) देखा, मेरा दिमाग !

कंचन : यह क्या कबूतरखाना बनवा लिया है। पैसे फालतू हैं क्या ?

रतन : कबूतरखाना नहीं; यह है "बिल-खाना" !

कंचन : "बिल-खाना" ?

रतन : हाँ, देखो यह जो पहला खाना है, इसमें रखा करो वे सब 'बिल' जिन्हें महीने में चुकाना है; इस बीच वाले खाने में जो बिल चुका दिये गये हैं, उनकी रसीदें और इस तीसरे खाने में, बीमे की पालिसी और बैंक की नोटिस। समझीं ?

कंचन : समझी तो....लेकिन......

रतन : और देखो, बाहर लिख भी दिया है--Unpaid bills, Paid up bills, notices बस ! आँख मूंद कर जिस खाने की जो चीज़ है, उसी में डाल दो। न कागज खोने की दिक्कत, न मेज़ पर कूड़ा।

(खड़ा हो जाता है।)

कंचन : अच्छा तो लो, अभी से शुरुआत किये देती हूँ (**कोने में रखी मेज पर से कागजों का गट्ठर उठा लाती है**

और फिर डिब्बे के पहले खाने में डालते हुए) यह लो--ये और ये......और ये ये....

रतन : हें, हें (**निकट जाकर कलाई पकड़ता है**) सभी कागज पहले ही खाने में डाले दे रही हो। क्या इन सभी बिलों के रुपये इसी महीने में चुकाने हैं ?

कंचन : जी !....और यह लो तीसरे खाने की चीजें...बीमे की नोटिस, मोटरकार की किस्त की नोटिस और बैंक के ओवरड्राअल की नोटिस और......

रतन : ठहरो ! आखिर बीचवाले खाने में भी तो कुछ डालती जाओ।

कंचन : रसीदें? यही दो तीन रसीदें हैं--सो रखे देती हूँ, लो !

रतन : वस तीन ? तब यह खाना फिजूल ही बनवाया।

कंचन : और क्या ! अब तो इसके कारीगर का भी बिल देन पड़ जायगा।

(**व्यंग्यमयी हँसी**)

रतन : (**तैश में आकर**) तो लाओ चेकबुक। आज ही सब रुपये बेबाक किये देता हूँ।

कंचन : चेकबुक ? चेक काटते समय तो तुम्हें बहुत अच्छा लगता है।

(**वही व्यंग्यपूर्ण स्वर**)

रतन : मुझे क्या, मेरा लिखा हुआ चेक बैंकवालों को भी पसंद आता है। उस रोज एजेण्ट कह रहे थे कि मेरा दस्तखत बड़ा सुडौल और रोबीला है।

कंचन : क्या कहने ! लेकिन उस दस्तखत का जोर नहीं चलने का, महीने का आखिर है और एकाऊंट (Account) देखो तो बिल्कुल सिफ़र।

रतन : (**मानो गगन-गामी भानु धरती पर जा पड़ा हूं**) बड़ी मुश्किल है !....मैं समझता हूँ कि तुम्हारा जो यह वायलिन (**कोने की ओर इशारा करते हुए**) इतने दिनों से बेकार पड़ा है, उसे बेच कर कुछ बिल क्यों न चुका दिये जायँ।

कंचन : खूब ! — तुम्हारी जेब में यह जो फ़ाउण्टेन पेन (Fountain pen) है, इसे ही क्यों नहीं बेच डालते—सोने की निब और क्लिप है—अच्छे दाम आ जायँगे।

रतन : जानती हो इस फ़ाउण्टेन पेन से मैंने कितने बड़े-बड़े काम किये हैं।

कंचन : हूँ—फाइलों पर दस्तखत, और क्या ?

रतन : जनाब, इस फ़ाउण्टेन पेन से मैंने तुम्हारे बगीचे में बैठ कर कई तस्वीरें बनाई थीं। (**कुछ रुक कर**) बहुत पहले।

कंचन : बहुत पहले—जब मैं तुम्हें इस वायलिन पर धुन सुनाया करती थी।

[**क्षणिक मौन और फिर जान पड़ता है, मानो पुरानी याद की कंदरा में से उसके स्वर की प्रतिध्वनि आती हो।**]

रतन : हाँ, बहुत पहले ! .....क्या सच ही बहुत पहले ?

कंचन : (**स्त्री-सुलभ उपालंभ के स्वर में**) तुम तो ऐसे बातें कर रहे हो, जैसे अभी से हम लोग बुड्ढे हो चले।

रतन : मैं क्या ग़लत कह रहा हूँ—तुम सच ही अपने सारे हुनर भूल गई हो। यही वायलिन लो। कभी बजाती हो इसे ? पड़ा-पड़ा अपने करम को रोता रहता है बेचारा !

कंचन : उफ्फोह ! तुमने ही कौन से अपने शौक जारी रखे हैं ? इस फ़ाउण्टेन पेन से अब कितनी तस्वीरें बनाते हो ? (**आवाज़ में जो तेजी है अब उसके पीछे बेकार इंतजारी के घंटों की बेबस याद है और इसलिए असलियत भी**) ख़ामख्वाह की बातें ! रोज तो आफिस से सात बजे शाम को लौटते हो। इतवार का दिन मुलाकातों में बीत जाता है। वही दिन भर काम की रटना ! तुमको तो काम से शादी करनी चाहिए थी !

(**सोफ़े पर बैठ कर बुनना उठा लेती है**)

रतन : (**पुरुषोचित अहम्मन्यता के साथ चुटकी बजाते हुए और सोफ़े के किनारे पर पैर टेक कर।**)— अच्छा तो सुनो, मेरी एक सूझ। कल है छुट्टी, तुम उठाओ अपना वायलिन और मैं सँभालता हूँ अपना फ़ाउण्टेन पेन और हम लोग अभी चलते हैं पिकनिक के लिए—आज रात और कल दिन भर रहे यही शग़ल (**मानो दुनिया जीत ली**) तुम भी क्या कहोगी !

कंचन : (**अविश्वासपूर्ण जिज्ञासा**) कहाँ चलोगे पिकनिक के लिए ?

रतन : जहाँ तुम कहो।

कंचन : (**व्यंग्य और प्यार की सीमाएँ जहां मिलती हैं, वहां खेलनेवाली मुस्कान के साथ**) बड़ा शौक चर्राया एक साथ !

रतन : खैर ! जी तो तुम्हारा भी कर रहा है, लेकिन योंही नहीं जाना चाहती हो। बहाना ढूंढ रही हो जाने का।

[**दूर को हट जाता है। कुछ कूटनीतिज्ञता भी तो चाहिए न !**]

कंचन : (**पिघलते हुए**) कल किस बात की छुट्टी है ?

रतन : ठीक याद नहीं।....आज २८ तारीख है न ?.....
कल कोई छोटा-मोटा त्योहार है, उसी की शायद
छुट्टी है।...चलना है तो अभी चलो....सोच क्या
रही हो ?

कंचन : कल २९ तारीख है....२९ ! (**हठात्**) चलो....
जरूर चलो (**सावेश**) जरूर, जरूर....

रतन : हैं ! यह एक साथ बिजली क्यों चमकी ?

कंचन : तुम तो योंही हो।....(**शब्दों पर जोर देते हुए**) कल
२९ नवम्बर है....आया कुछ समझ में ?

रतन : २९ नवम्बर ! २९ नवम्बर !! (**कुछ सोचता है**)
हाँ, हाँ (**अट्टहास**) यानी कल पाँच बरस हो जायँगे
हम लोगों की शादी को ?....खूब सूझी तुम्हें ! मैं
तो भूल ही गया था। तुम्हारी याददाश्त क्या है—
डायरी के पन्ने हैं।

कंचन : तुम तो कुछ मिनट पहले बुड्ढे बने जा रहे थे !

रतन : मैं गलती पर था। (**समां बदल रहा है**)....
चलो !....यह पाँच वर्ष नहीं, पाँच दिन बीते हैं।
जीवन सामने है—पीछे नहीं....यह पिकनिक भी
क्या मौके से आया। चलो, कैमरा ले चलना।

कंचन : कैमरा क्यों ? (**कल्पना जागृत हो चली और अविश्वास
की बदली गायब हो गई**) इस बार तो तुम
फाउण्टेन पेन से तस्वीर बनाना पहले की तरह !

रतन : ठीक ! तो फिर ग्रामोफोन की भी जरूरत नहीं। तुम्हीं
वायलिन पर कोई पुरानी ट्यून छेड़ना। (**मस्ती के स्वर
में**).....खूब गुज़रेगी.... जो मिल बैठेंगे दीवाने दो!"

कंचन : और यह........ (**शरारत की मुस्कान**) यह जो कबूतरखाना तुमने बनवाया है ? यह भी जायगा साथ में ?

रतन : यह बिलों का गट्ठर ? यह मुसीबतों का बस्ता ?

कंचन : छोड़ जाऊँ इसे ?

रतन : (**कुछ सोच कर**) नहीं, यह भी साथ में जायगा।

कंचन : (**मतभेद का कोई सवाल ही नहीं**) वहीं फुरसत से बैठकर हिसाब-किताब भी कर लेंगे।

रतन : हाँ, यह पिकनिक तो 'माइलस्टोन' है, हम लोगों की जिन्दगी का। और ज़िन्दगी को कोरा सपना समझना भी इतनी ही बेवकूफी है जितना उसे केवल संघर्ष—कठिनाइयों की मंजिल समझना।

कंचन : (**वायलिन उठाते हुए**) अब लगे झाड़ने फ़िलासफी।

रतन : ठीक कह रहा हूँ। यही तो जिन्दगी है—पथरीली चट्टानों और रस भरे बादलों का संयोग।

कंचन : कभी-कभी तो तुम सच ही चट्टान-से लगने लगते हो।

रतन : और तुम ? बादल !

[कंचन के दोनों हाथ पकड़ कर आँखें आँखों में डालते, प्रसिद्ध फिल्मी तर्ज की नकल में—]

"धीरे-धीरे आ रे बादल....... धीरे....."

[खींच कर ले जाता हुआ दीखता है, कौन जाने कहाँ ? पर कमरे का कोना-कोना मुखरित हो गया है और यदि पर्दा नहीं गिरेगा, तो सोफ़ा, कालीन और आतिशदान पर रखे खिलौने भी गा उठेंगे—

इसलिए—

पर्दा गिरता है।]

भाषण

पात्र

मोहिनी
बेरा
रहीम
भोलासिंह
हरीशनन्दन
हेडमिस्ट्रेस
लेडी साहबा की आवाज़
गीत गानेवाली लड़कियां ।

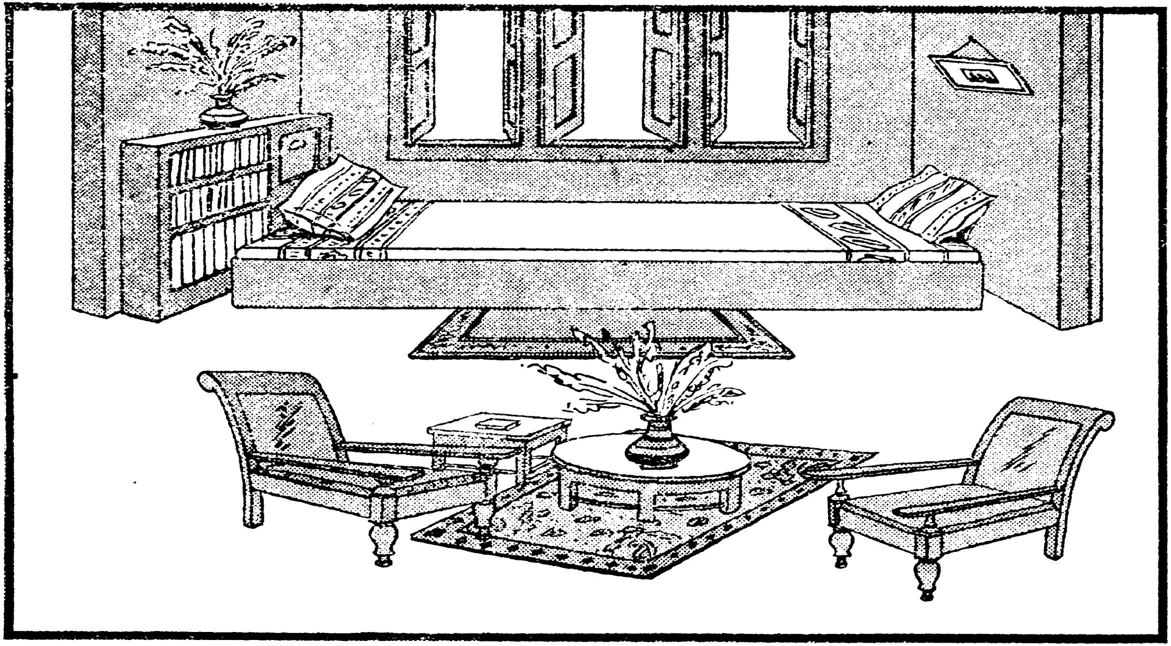

भाषण—पहला दृश्य

पहला दृश्य

[मि० हरीशनन्दन दानापुर के सब-डिवीज़नल आफिसर——या आजकल की भाषा में उप-मंडलाधीश ——के मकान का गोल कमरा। समय संध्या! कमरे की बनावट उस ज़माने की है जब गोल कमरा गोल हुआ करता था। दर्शकों को सामने की बे-विण्डो यानी तीन खिड़कियाँ नज़र आती हैं। और इन खिड़कियों के दोनों तरफ़ एक-एक द्वार! द्वार और खिड़कियों के पीछे बरामदा है और उसके पीछे बागीचा जिसकी अस्पष्ट झलक मिलती है। खिड़कियों से सटी गद्देदार बेंच है जिस पर बैठ कर उपवन की बहार और आगत व्यक्तियों की झाँकी ली जा सकती है।

कुछ नीची कुर्सियाँ, एक कौच, कुछ छोटी मेजें, एक तरफ़ किताबों की आलमारी, दूसरी तरफ़ एक ऊँची मेज जो लैम्प रखने के काम आती है, दो कालीन, दो फूलदान, ऐश ट्रे यही इस गोल कमरे का फर्नीचर है; दीवारों पर कुछ तसवीरें भी, एक तसवीर ऊँची मेज़ पर भी है।

अँधेरा होने के कारण खिड़की के पास बैठी हुई युवती महिला का चेहरा साफ़-साफ नजर नहीं आता है, लेकिन मिसेज हरीशनन्दन या मोहिनी, सुन्दरी है, इसमें सन्देह की गुंजायश नहीं। इंतजारी की ऊब से बचने के लिए या किसी और कारणवश बुनाई के द्वारा दिल बहलाव कर रही है ! नेपथ्य में पेट्रोमेक्स लैम्प में गैस भरने की आवाज़ जिसे मोहिनी कान लगाकर सुनती है]

मोहिनी : नहीं जलता बेरा ?

बेरा : (नेपथ्य से) जी नहीं ! अकसर ऐसे ही धुक-धुक कर रह जाता है ! आजकल के पेट्रोमेक्स भी तो बेकार......

मोहिनी : तो लालटेन ही ले आओ......

[बेरा लालटेन लाकर रख देता है और फिर बायें दरवाजे से चला जाता है ! गोल कमरा अर्ध-विकसित सौन्दर्य से जगमगा उठता है ! उसी समय एक अर्दली प्रवेश करता है ! यह है रहीम जैसा कि आप बाद के वार्तालाप से समझ जायँगे !]

रहीम का परिचय उसकी बातचीत से ही मिल जाता है । ठोड़ी पर हलकी डाढ़ी, आँखों में जमाने की गर्दिश, छरहरे बदन पर अक्षय सत्ता की वर्दी जो १५ अगस्त १९४७ के तंग दर्रे में से भी अछूती निकल आई, सिर पर पगड़ी, जिसका झब्बा ओहदे का प्रतीक है और जबान पर सरस्वती—वीणावादिनी नहीं, बल्कि वह जो मंथरा की जिह्वा पर आरूढ़ हुई थी, ऐसा है रहीम अर्दली। जैसे दूकान को साइनबोर्ड की

ज़रूरत होती है ऐसे ही अफ़सर को अर्दली की। रहीम मामूली साइनबोर्ड नहीं है, उसकी चमक ज़माने के साथ बढ़ती ही गई है। अफ़सर आये और चले गये, लेकिन दानापुर कचहरी के इस साइनबोर्ड की आभा वैसी ही है।]

रहीम : मेम साहब !

मोहिनी : किसको खोजते हो चपरासी ?

रहीम : एक बूढ़ा आपसे मिलना चाहता है। बाहर खड़ा है।

मोहिनी : बूढ़ा ? मैं किसी बूढ़े को नहीं जानती !

रहीम : वह तो कहता है कि मेम साहब से दो बात किये बिना......

मोहिनी : मेम साहब ? कौन मेम साहब ?

रहीम : हुजूर--

मोहिनी : चपरासी, मैं मेम साहब नहीं हूँ !

रहीम : जी !

मोहिनी : मुझे मेम साहब कह कर मत पुकारना ! समझे ?

रहीम : लेकिन, हुजूर, इस कोठी में तो बराबर मेम साहब लोग का ही ठिकाना रहा है। (**मोहिनी की मौन उत्सुकता से मानो बढ़ावा पाकर**) बीस बरस से चपरासी हूँ हुजूर; अंग्रेजों का ज़माना भी देखा है और अब हिन्दुस्तानियों का भी ! मैस्कट साहब की शादी भी यहीं हुई थी। आप ही की तरह उनकी भी नयी दुलहिन आई थी ! और वह खन्ना साहब स्टेशन से यहाँ तक मय मेम साहब के हाथी पर आये थे और इक़बाल हुसेन साहब भी यहाँ एस० डी० ओ० थे और उनकी बेगम साहबा...

मोहिनी : क्या ये सभी मेम साहब कहलाती थीं ?

रहीम : और दूसरा नाम तो इस कोठी में फबता ही नहीं है हुजूर। यहाँ के लोगों की घरवाली को मालकिन भी कहते हैं.....

मोहिनी : ओह 'नो', मालकिन तो भद्दा सा लगता है।

रहीम : जी हाँ, और फिर बेगम साहिबा.....

मोहिनी : नहीं, वह भी ठीक नहीं। हमारे पड़ोसी मौलवी साहब की बेगम साहिबा के मुंह से पान की पीक ही निकलती रहती थी !

रहीम : कश्मीरियों में रानी साहिबा कहने का रिवाज है लेकिन.......

मोहिनी : नहीं, नहीं। वह तो किस्से-कहानियों में कहा जाता है !

रहीम : तो हुजूर हमेशा का कायदा चला आया है, अफ़सरों को बीवियाँ मेम साहब ही कहलाती रही हैं--इसीमें उनका रुतबा है !

मोहिनी : (**किंचित पराजित स्वर में**) मेम साहब !

रहीम : जी हाँ, अंग्रेजों ने बहुत सोच-समझकर ये सब नाम रखे थे हुजूर ! देखिए न इस लफ्फज़ मेम साहब में साहब शामिल होने की वजह से क्या रोब, क्या हुकूमत आ गई है ! क्या बताऊँ, हुजूर, अब वे हुकूमत के दिन ही लद गये ! हुजूर के साहब...तो, परमात्मा की दुआ से...सूरत से ही अफ़सरी टपकती है, लेकिन ज़माने ने भी कैसा पलटा खाया है ! इस कोठी में जब मैस्कट साहब....

मोहिनी : (**खिड़की की ओर देखते हुए**) चपरासी तुम बात बहुत करते हो और देख-भाल कम ! यह देखो कौन मकान में घुसा चला आ रहा है !

रहीम : (**जो निष्प्रभ होना जानता ही नहीं**) माफी हुजूर ! (**मुस्तैदी से दरवाज़े के निकट आ पहुँचे किसी व्यक्ति को सम्बोधित करके**) अरे, यह तो वही बूढ़ा है ! अबे, यह क्या हिमाक़त है ? तुझसे कहा था बाहर ही बैठियो. . . .चल निकल !

[**लेकिन वह व्यक्ति अन्दर आ ही पहुँचता है । नाटे कद का ग्रामीण, आयु ५५ वर्ष के क़रीब, आँखों और चाल ढाल से बेबसी, आते ही मोहिनी के पैरों पर गिर पड़ता है ।**]

मोहिनी : अरे, अरे. . . . .यह मेरे पैर क्यों पकड़ रहा है ? चपरासी, चपरासी, इसे उठाओ ! कहाँ की मुसीबत आ पड़ी !

आगन्तुक : दया कीजिए ! मुझे बचाइए ! हजूर, हजूर !!

मोहिनी : अरे भई, इसे उठाओ भी. . . . .(**रहीम काफी मेहनत से उसको उठाता है**) अरे, यह तो रो रहा है ।

रहीम : हुजूर, मुसीबत का मारा हुआ है ।

मोहिनी : क्या हुआ इसे ?

रहीम : बताता क्यों नहीं भोला सिंह ? बोल !

भोलासिंह : बे मौत मर जाऊँगा हुज़ूर ! दया कीजिए . . .

(**रहीम की ओर उम्मीद से देखता है ।**)

रहीम : बात यह है हुज़ूर कि इस ग़रीब को इसके दुश्मन बहुत परीशान कर रहे हैं ।

भोलासिंह : मिनट भर को चैन नहीं है । सरकार, जुलम का कोई

ठिकाना नहीं ! झूठे मुकदमे में फँसा लिया गया हूँ ! जायदाद ले ली सो अलग—

मोहिनी : किसने ?

रहीम : इसके दुश्मनों ने ! सब इसके रिश्तेदार हैं, लेकिन आज जान के ग्राहक बने हुए हैं !

भोलासिंह : सरकार मर जाऊँगा । सारे इलाके में कोना भर भी सरन नहीं मिलती ! दुश्मन हाथ धो के पीछे पड़े हैं।

मोहिनी : तो क्या सारे इलाके में कोई इसको सहारा नहीं दे सकता ?

रहीम : सहारा तो बस एक ही जगह से मिल सकता है !

मोहिनी : यानी ?

रहीम : बोलता क्यों नहीं बे ?

भोलासिंह : हजूर, साहब के ही इजलास में मुकदमा है—बेमौत मर जाऊँगा ।

रहीम : जी हाँ, हुजूर, आपके मुंह से सही बात साहब के कानों पड़ जायगी तो बेचारे का उद्धार हो जायगा ।

मोहिनी : हाँ, हाँ जब बेचारे पर इतनी मुसीबत है तो मैं उनसे कह दूंगी ! गरीब की मदद होनी चाहिए ।

भोला सिंह : हुजूर की उमर दिन दूनी रात चौगुनी हो, हुजूर के गोद में जल्दी ही चाँद सा बच्चा ......

मोहिनी : (**झुंझलाहट से**) यह क्या वाहियात बकता है बूढ़े···

रहीम : हजूर वह भी दिन देखने को····

[**बाहर मोटर की आवाज सुनकर आतुर हो मोहिनी उठ खड़ी होती है**]

मोहिनी : यह लो मोटर गई ! (**दरवाजे की ओर बढ़ती हुई**) चपरासी, क्या नाम है इसका ?

भोला सिंह : हजूर, भोला सिंह मौजा बिक्रमपुर थाना सरीता—

मोहिनी : ठीक है.....मैं साहब से बात करूँगी । **चपरासी,** तुम इसे रोके रखना —

[दाहिने दरवाज़े से मोहिनी का प्रस्थान, रहीम की मुद्रा बदलती है ।]

रहीम : (**आहिस्ता किन्तु कर्कश स्वर में**) निकाल दे पाँच का नोट !

भोला सिंह : अभी काम तो पूरा होने दो चपरासी जी !

रहीम : लगाऊँगा एक धौल तो अक्ल ठिकाने आ जायगी ! मुझे ही चकमा देता है !

भोला सिंह : देखिए कोई आ रहा है !

रहीम : तो चल बाहर ! उधर से नहीं इधर से ! छोड़ूँगा नहीं !

[बायें दरवाज़े से भोला को घसीटते हुए ले जाता है । थोड़ी देर बाद दाहिने दरवाज़े से बातें करते हुए हरीश और मोहिनी का प्रवेश ! कहते हैं नया मुसलमान अल्लाह ही अल्लाह पुकारता है ; नया अफ़सर भी काम ही काम की रट में एक अनोखी स्फूर्ति का अनुभव करता है । हरीश अपनी सफ़ाई देने में वही कौशल दिखा रहा है जो मुद्दालह की ओर से बहस के वक्त नया वकील दिखाता है ।

हरीश नन्दन : भई माफ़ करना । क्या करूँ यह काम ऐसा आ पड़ा कि रुक जाना पड़ा । वर्ना शुरू में ही नयी दुलहिन को इस तरह अकेलेपन की बेबसी में....

मोहिनी : (**चौंककर रुकते हुए**) शुरू में ही ? ...तो क्या बाद में यह रोज़मर्रा का दस्तूर हो जागा ?

हरीश नन्दन : (**जल्दी से**) नहीं, नहीं ! (**कुर्सी पर बैठ कर टाई खोलते हुए**) थोड़ा बहुत काम तो लगा ही रहता है । फिर भी इस वक्त तक तो हमेशा कचहरी से फुरसत मिल ही जाया करेगी ।

मोहिनी : (**रूठते हुए**) समझ गई ! आज तो देरी का रिहर्सल था !

हरीश नन्दन : अरे सुनो तो ! देरी किस वजह से हुई यह तो सुनो ....तबीयत फड़क जायगी !

मोहिनी : क्या इस बेकार शहर में बिजली लगने वाली है ?

हरीश नन्दन : बिजली ? हाँ, तुम्हें बड़ा अजीब सा तो लगता होगा ! कहाँ कानपुर की चहल-पहल और कहाँ यह लालटेन की रोशनी !

मोहिनी : वह तुम्हारे पेट्रोमेक्स लैम्प का तो हार्ट फेल कर गया ! (**हँसकर**) बड़ी मिन्नतें की लेकिन न जाने कैसा दिलजला है ?

हरीश नन्दन : (**शरारत भरी मुस्कान**) तुम्हें देखकर शरमा रहा होगा !

मोहिनी : तुम्हारे ही सामने कौन से जौहर दिखाता है ? बेरा कह रहा था कि अकसर यही हाल रहता है !

हरीश नन्दन : (**अपने उत्साह पर अफ़सरियत की लगाम लगाते हुए**) देखो, लाट साहब के सामने बिजली का ज़िक्र करूँगा ! शायद कुछ......

मोहिनी : लाट साहब ?

हरीश नन्दन : वही तो बता रहा था कि देरी क्यों हुई । यहाँ लाट साहब आने वाले हैं, सूबे के गवर्नर और उनकी लेडी ! आज ही ज़रूरी चिट्ठी मिली है और प्रोग्राम

भी ! जिक्र तो पहले से चल रहा था ! आज हुकुम आ गया ! दस तारीख को आ जायँगे ।

मोहिनी : आठ दिन ही तो रह गये हैं ।

हरीश नन्दन : हाँ, सभी इन्तजाम करने हैं इस बीच में ।

मोहिनी : (**दिलचस्पी बढ़ रही है**) चलो, कुछ चहल-पहल हो जायेगी ।

हरीश नन्दन : हाँ, तुम्हारे भी ज़िम्मे कुछ काम रहेगा ।

मोहिनी : चाय पार्टी का बन्दोबस्त करना है ? मीनू तो अभी बनाये लेती हूँ...हमारा प्रेज़ण्ट्स वाला टी-सेट अच्छा रहेगा.......लेकिन बेरा की शक्ल तो देखो ।

हरीश नन्दन : चाय पार्टी का तो अभी तय नहीं हुआ है ।

मोहिनी : तब ? मेरे ज़िम्मे और कौन काम हो सकता है ?... (**सहसा गृहिणी के कर्त्तव्य को याद करते ही पुकारती है**) बेरा....चाय ले आओ । जल्दी !

बेरा : (**नेपथ्य से**) जी, तैयार है !

हरीश नन्दन : (**बात जारी रखते हुए**) बात यह है कि गवर्नर साहब को तो मैं ले जाऊँगा देहात; एक इलाके का मुलाहिज़ा कराना है और एक नये बाँध की ओपनिंग भी ! और लेडी साहबा को पहुँचा दूंगा अस्पताल ! वहाँ तुम उनका स्वागत करना और अस्पताल दिखा देना !

मोहिनी : बड़ा आलीशान है न तुम्हारा अस्पताल !

हरीश नन्दन : पुराना कायदा है ! गवर्नर साहब लोगों से हाथ मिलाते हैं और उनकी बीवी अस्पताल देखती हैं और लड़कियों के स्कूलों में इनाम बाँटती हैं !

मोहिनी : स्कूल ?

हरीश नन्दन : हाँ, उसके बाद तुम उन्हें लड़कियों के स्कूल में ले जाना !

मोहिनी : लेकिन आजकल तो इनाम बाँटने का वक्त ही नहीं है ! इम्तेहान तो अभी हुए नहीं होंगे ।

हरीश नन्दन : अरे, जब पिया आये तभी सावन ! जलसा तैयार करने में क्या लगता है !

बेरा : (**ट्रे लेकर आता है**) चाय हुजूर !

मोहिनी : रख दो यहीं ! (**हरीश से**) आज कैसी चाय लोगे ?

हरीश नन्दन : गहरी ! दिमाग़ पर ज़ोर पड़ा है ! (**मोहिनी हँसती है**) अब तुम्हें भी गहरी चाय की ही ज़रूरत पड़ेगी !

मोहिनी : मेरा दिमाग मेरे काम के लिए तैयार है, बिना चाय के ही !

हरीश नन्दन : तो ठीक है ! अभी से अपना भाषण लिखना शुरू कर दो !

मोहिनी : भाषण ?

हरीश नन्दन : हाँ, जलसे के मौके पर तुम्हें भाषण देना है ।

(**मोहिनी चौंक पड़ती है ।**)

मोहिनी : मुझे भाषण......देना है ।

[**आंखें हरीश पर हैं और हाथ में दूध का जग है, जो प्याले पर निछावर हो रहा है**]

हरीश नन्दन : हें, हें सारा दूध ही उँडेले दे रही हो ! ऐसी क्या क़यामत आ गई !

मोहिनी : क़यामत, नहीं तो क्या...तुमने तो मुझे डरा ही दिया । अब बनाओ तुम्हीं अपनी चाय ! (**ट्रे हरीश की तरफ़ सरका देती है**).... भाषण !....भई, यह सब मुझ से नहीं होगा....और फिर मैं

क्यों भाषण दूं ? मुझ से और स्कूल से क्या मतलब ?

हरीश नन्दन : मतलब ? वाह तुम तो उसकी मैनेजिंग कमेटी की प्रेज़िडेण्ट हो !

(**चाय बनाने लगता है ।**)

मोहिनी : खूब ! मुझ से तो किसी ने पूछा नहीं कि मुझे स्कूल की प्रेज़िडेण्ट बनना है ।

हरीश नन्दन : अफ़सर की बीवी से पूछा नहीं जाता, हर एस० डी० ओ० की बीवी स्कूल की प्रेज़िडेण्ट रही है सो तुम्हें भी........

मोहिनी : यह खूब, मार-मार कर हकीम.....

हरीश नन्दन : यह लो चाय, गहरी ! (**हँसता है**) भाषण तैयार करने में मदद देगी !

मोहिनी : भई, मुझे तो बुखार चढ़ जायेगा ।

हरीश नन्दन : अरे, भाषण जमाने में क्या लगता है ! दो चार वकील-मुख्तार तो पहले से तय कर रखूंगा । ठीक-ठीक मौकों पर ताली बजावेंगे । तुम्हारा दिल भी बढ़ जायेगा और भूले हुए वाक्य याद करने का वक्त भी मिल जायेगा ।

मोहिनी : लड़कियों के स्कूल में वकील-मुख्तार ?

हरीश नन्दन : हाँ ! यह तो तुमने ठीक ही कहा ! वहाँ तो सख्त पर्दा है......(**सोचता है**) खैर, उसका भी इन्तज़ाम हो जायेगा.......

मोहिनी : (**शरारत से**) एस० डी० ओ० के लिए क्या मुश्किल है...लेकिन मेरा भाषण तो तैयार कराओ !

हरीश नन्दन : देखो इन भाषणों का भी एक नुस्खा होता है । पहले

खुशामद की चाशनी उठाओ, उसके ऊपर थोड़ा सा स्कूल की खूबियों का सफ़ूफ़ फैलाओ, फिर चन्द जरूरी माँगों के छींटे डालकर, जोश का जुशांदा दो; और और बस हो गई तैयार स्पीच !

मोहिनी : और जिसने इस भाषण का घूँट पिया वह तो बस हो गया नीलकंठ ! मामूली जहर थोड़े ही है !

(बेरा आकर कोने में खड़ा हो जाता है ।)

हरीश नन्दन : तुम भी क्या बातें करती हो । थोड़े दिन में तो तुम्हें ही मजा आने लगेगा इसमें ! (**बेरा को देखकर**) ....क्यों, बेरा, अभी तो हम लोग चाय पी ही रहे हैं !

बेरा : (**कुछ हिचकिचाहट के साथ**) जी वह......वह बाहर खड़ा इन्तज़ार कर रहा है ।

हरीश नन्दन : कौन ?

मोहिनी : अरे हाँ ! वह तो मैं भूल ही गई....देखो जी, तुम कैसे अफ़सर हो ! एक बेचारे दुखियारे बूढ़े का भला भी नहीं कर सकते ?

हरीश नन्दन : यह खूब रही ! कोई भलेपन का खज़ाना मेरे पास थोड़े ही है जो बाँटता फिरूँ !

(बेरा बाहर चला जाता है ।)

मोहिनी : अभी तो ऐसी बातें कर रहे थे मानो आकाश में पैवन्द ही लगा दोगे ।

हरीश नन्दन : बताओगी भी कुछ !

मोहिनी : तुम्हारे यहाँ कोई थाना है सरीता ?

हरीश नन्दन : है तो ।

मोहिनी : उसमें एक गाँव है बिक्रमपुर ?

हरीश नन्दन : वह भी है ।

मोहिनी : वहीं का है वह बेचारा !

हरीश नन्दन : थाना सरीता, मौज़ा बिक्रमपुर (**सोचता है**) **अरे,** भोला सिंह तो नहीं ?

मोहिनी : यही तो नाम बताया था उसने !

हरीश नन्दन : (**ठहाका मारकर हँसता है**) हा हा हा........ भोला सिंह, बेचारा ? हा हा हा--

मोहिनी : हँस रहे हो ? बड़ा ग़रीब है !

हरीश नन्दन : भोला सिंह ग़रीब ?....हा हा हा।

मोहिनी : बड़ा दुखियारा है बेचारा !

हरीश नन्दन : भोला सिंह दुखियारा ?......हा हा हा

मोहिनी : मैं कहती हूँ और चाहे जो करो उस ग़रीब की जायदाद मत लुटने देना।

हरीश नन्दन : जायदाद !......अरे वह इतना मालदार है कि हमें तुम्हें ख़रीद कर रख दे।

मोहिनी : वह ? चीथड़े तो पहने था......

हरीश नन्दन : रईस की तरह आता तो तुम उस पर पसीजती थोड़े ही। आया होगा अपने मुक़दमे की सिफ़ारिश कराने।

मोहिनी : तुम्हें कैसे मालूम ?

हरीश नन्दन : वह है नम्बरी मुक़दमेबाज़, सारा इलाका जानता है।

मोहिनी : चपरासी तो कहता था कि उसके दुश्मनों ने उसे फँसा दिया है !

हरीश नन्दन : फिर यह चपरासी बदमाशी करने लगा। (**ज़ोर से आवाज़ देकर**) : ...रहीम !

रहीम : (**नेपथ्य से वही मुस्तैद आवाज़**) आया हुज़ूर !

हरीश नन्दन : उसी भोला सिंह से उलझ रहा होगा।

(रहीम आता है और अदब से सलाम देता है ।)

हरीश नन्दन : देखो जी रहीम, यह जानते हुए कि भोला सिंह पुराना मुक़दमेबाज़ है, तुमने उसे अन्दर क्यों आने दिया ?

रहीम : (**जैसे इस प्रश्न का इंतजार कर रहा हो**) हुज़ूर, मैं तो उसे रोक ही रहा था कि कम्बख्त यहाँ आ पहुँचा ! बात यह है हुज़ूर कि मेम साहब का दिल तो दया से भरपूर है। दूसरे की मुसीबत देखकर ज़रा सी देर में पसीज जाती हैं। (**तीर निशाने पर ठीक बैठा है** !) यही तो ऊँचे घराने की निशानी है ! सारे इलाके में मेम साहब के मिज़ाज की शोहरत है; घर-घर में गुनगान हो रहे हैं ! यों तो हुज़ूर का वैसे ही बहुत इक़बाल है, लेकिन मेम साहब के मिज़ाज और दरियादिली ने उसमें चार चाँद लगा दिये हैं ! हम लोगों का भी भाग ऊँचा है कि ऐसी मेम साहब की खिदमत का मौक़ा...

हरीश नन्दन : (**झुंझलाहट, मीठी झिड़की में तबदील हो गई है**) अच्छा, अच्छा जाओ ! आगे से ऐसी ग़लती न करना ! उसे चलता करो !

[रहीम लम्बा सलाम झुका कर अदब के साथ बाहर जाता है ।]

मोहिनी : बड़ा ही बातूनी है ।

हरीश नन्दन : लेकिन तबीयत तो उसने मेरी खुश कर दी !

मोहिनी : (**जानकारी की मुस्कान**) बड़ी जल्दी....

हरीश नन्दन : (**मोहिनी की कुर्सी के पीछे जाकर उसके बालों को उँगलियों में उलझाते हुए**) तुम्हारी तारीफ़ सुन कर मेरा सीना चौड़ा हो जाता है !

मोहिनी : (**बालों को छुड़ाती हुई, हँसकर**) हटो भी !

हरीश नन्दन : लोग ठीक कहते हैं, साहब को खुश करना हो तो मेम साहब से शुरुआत करो ! पहले मैं इस बात को नहीं मानता था !

मोहिनी : अब क्या तुम भी मुझे मेम साहब कहोगे ?

हरीश नन्दन : क्या बुराई है ? हमारे एक दोस्त और उनकी बीवी एक दूसरे को डार्लिंग कहते थे सब के सामने। 'डार्लिग' वह किताब तो उठा दो, 'डार्लिंग' आज तरकारी में नमक ज्यादा है। 'डार्लिंग' कोट में बटन......

मोहिनी : गोया कि 'डार्लिंग' क्या हुआ......घिसा हुआ पैसा हो गया ?

हरीश नन्दन : घिसा हुआ पैसा !...क्या पते की बात कही है तुमने ! कुछ लोग रोमांस को रोज़ाना की जिन्दगी में भिड़ाकर घिसा हुआ पैसा ही बना देते हैं।

मोहिनी : असली रोमांस नहीं नकली रोमांस ! केमिकल गोल्ड ! लेकिन रोज़ाना के जीवन में से असली रोमांस का बहिष्कार करोगे तो मुक़दमों की मिसलों में ही फँसे रह जाओगे। न भई, ऐसी बातें कहकर मुझे न डराओ !

हरीश नन्दन : यह बात नहीं (**रुककर**) सुनो, आज तो एक रोमांटिक प्रस्ताव लेकर आया हूँ ! चलो मेरे साथ दौरे......

मोहिनी : मोटर से या रेल से ?

हरीश नन्दन : कुछ दूर मोटर से, फिर हाथी से, फिर पैदल और लौटते वक्त नाव से ! कहो, क्या एडवेंचर का नुस्खा मौजूद है !...हो तैयार ?

मोहिनी : क्यों नहीं (**फिर याद आते हुए**) ...लेकिन...वह भाषण ?

हरीश नन्दन : लाट साहब वाला ?....उसका इंतज़ाम लौटने पर होगा ! तुम बेफ़िक्र रहो !

मोहिनी : तुम जानो । मर्ज़ तुमने दिया है तो दवा भी तुम्हें ही करनी है !

हरीश नन्दन : लो रोमांस तो तुम बिगाड़ रही हो !

मोहिनी : कैसे ?

हरीश नन्दन : एक बढ़िया से शेर को तुम ने यों ही उँडेल दिया । असली चीज़ तो यह है--

तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं......

(पर्दा गिरता है ।)

दूसरा दृश्य

[दानापुर गर्ल्स मिडिल स्कूल का पीछे वाला बरामदा। बरामदे के पीछे कुछ सीढ़ियां हैं और तीन दरवाजे, जिनमें बीच वाला बन्द है! इन दरवाज़ों के पीछे एक हाल है जिसमें स्कूल का पारितोषिक-वितरण-उत्सव हो रहा है! सभा की कार्रवाई सुनाई पड़ती है!

बरामदे में एक कुर्सी और एक बेंच पड़ी है। कुर्सी पर हरीश नन्दन कुछ चिन्तामयी उत्सुकता में बैठे हुए हैं, महिलाओं का जलसा होने के कारण उन्हें इस पिछवाड़े के बरामदे में बैठकर ही सन्तोष करना पड़ रहा है। हाल में से गवर्नर साहब की लेडी साहबा के भाषण के अन्तिम शब्द सुनाई पड़ते हैं।]

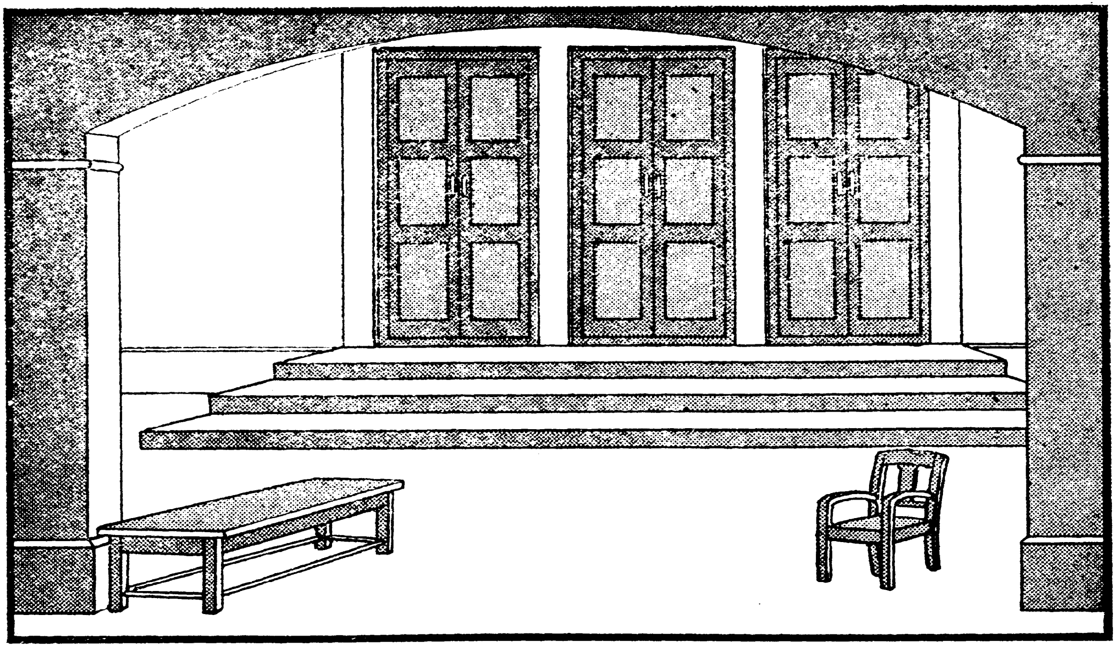

भाषण—दूसरा दृश्य

लेडी साहबा : और मैं उम्मीद करती हूँ कि आप लोगों के स्कूल की तरक्की बराबर होगी और थोड़े दिन बाद यह मिडिल स्कूल हाई स्कूल बन जायगा ।

[**ताली....थोड़ी देर में हारमोनियम की आवाज सुनाई पड़ती है। फिर घबराई हुई हालत में हेडमिस्ट्रेस प्रवेश करती है--अधेड़ उम्र, रंग सांवला, चश्मा, साड़ी पहनने का ढंग पुराना। जिस ढंग से मर्दों से बात करती है, उसे देख कर एक नयी प्रकार की नायिका का आभास होता है, 'अज्ञात-प्रौढ़ा' ! लेकिन इस समय घबराई हुई है।**]

हेडमिस्ट्रेस : सर, सर ! ....वह तबले वाली अध्यापिका जाने कहाँ चली गयी ?

हरीश नन्दन : क्या ? स्वागत गान पर तो मौजूद थी और अब आख़िरी में ग़ायब ? रहीम, रहीम !....कहाँ मर गया ?

हेडमिस्ट्रेस : अब कैसे होगा !

हरीश नन्दन : देखिए कोशिश तो करता हूँ....क्या करूँ आपका ज़नाना जलसा है, वरना तबला तो मैं ही बजा लेता !

हेडमिस्ट्रेस : सर, सर, देर हो रही है ।

हरीश नन्दन : (**मजबूरन**) अच्छा, तबला, यहीं ले आइए। मैं यहीं से बजाता रहूँगा ।

हेडमिस्ट्रेस : सर, आपकी बड़ी मेहरबानी है। आप ही की वजह से...

हरीश नन्दन : (**झुंझलाहट में**) अच्छा अच्छा, वक्त खराब न कीजिए (**हेडमिस्ट्रेस जाती है**) जब कोई और चारा ही नहीं !......

रहीम : (**तेज़ी में आकर सलाम झुकाता हुआ**) हुज़ूर ने बुलाया था?

हरीश नन्दन : कहाँ चला गया था ? हमेशा ज़रूरत के वक्त ग़ायब मिलते हो। देखो, थोड़ी देर के लिए किसी को इधर मत आने दो !

रहीम : जी हुज़ूर !

हरीश नन्दन : तुम भी न आओ !

रहीम : जी हुज़ूर !

[रहीम कुछ हक्का-बक्का होकर बाहर जाता है ? थोड़ी देर में दोनों हाथों में मुश्किल से तबले थामे हुए हेडमिस्ट्रेस का प्रवेश, हरीश के पास तबला रख देती है। हरीश जोश में आकर तबले पर थोड़ा हाथ चलाते हैं।]

हेडमिस्ट्रेस : वही छोटी सी चीज़ है, किन शब्दों में करें बखान....

हरीश नन्दन : तिताला या कहरवा ?

हेडमिस्ट्रेस : जी, ताल ? (**कुछ फेर में पड़कर फिर साफ़ स्वर में**) जी जिस ताल में चाहें बजा लीजिए !

हरीश नन्दन : जिस ताल में चाहें ? (**चिढ़ कर**) आप अध्यापिका जी कुछ जानती भी हैं ?...तबला भी कोई चपत है जिस गाल पर चाहे लगा दीजिए !

हेडमिस्ट्रेस : (**सकपकाती हुई**) जी, वह संगीत की अध्यापिका दूसरी हैं....!....क्या करूँ वह....लीजिए लड़कियों ने शुरू भी कर दिया !

[झट से अन्दर घुस जाती है। नेपथ्य से गाना कोरस...अलग-अलग स्वरों की अलग-अलग गति जैसे स्लोसाइक्लिंग रेस में दौड़ने वाली साइकिलें ! हरीश तबले पर ताल जमाने की कोशिश करते हैं मगर आसान नहीं है।]

किन शब्दों में करें बखान
हो तुम हम सब के मेहमान
सदा रहें हम पर श्रीमान्....

(लड़कियां रुक जाती हैं...फिर...) नहीं नहीं...

सदा रहे हम पर हे मात,
कृपा-दृष्टि तेरी, हे मात
हम सब बच्ची रहीं निहार
कब होवे नैया ये पार
किन शब्दों..........

[हरीश मजबूरन आधे गीत में ही तबला छोड़ देते हैं। चेहरे पर सख्त झुंझलाहट ! नेपथ्य से तालियों की आवाज़। थोड़ी शान्ति के बाद मोहिनी के खखारने की आवाज़ ! हरीश हठात् चैतन्य हो जाता है। जल्दी जल्दी जेब से एक कागज़ निकालता है। इतने में रहीम आता है।]

रहीम : हुज़ूर !

(झुंझलाहट से हरीश उसकी ओर मुड़ते हैं।)

रहीम : हुज़ूर वह तबले वाली——

हरीश नन्दन : **(होठों पर उंगली रख कर आहिस्ता स्वर में)** चुप, चुप ! मेम साहब बोल रही हैं !

रहीम : मेम साहब......

हरीश नन्दन : बोल रही हैं, भाषण दे रही हैं !

[नेपथ्य से भाषण आरम्भ होता है, आवाज़ में थोड़ी लड़खड़ाहट। भावोन्मेष नहीं है, यद्यपि खत्म करने की जल्दी तो है ही]

मोहिनी : श्रीमती सभानेत्री महोदया, महिलाओ और बालिकाओ,

इस स्कूल की मैनेजिंग कमेटी की ओर से मैं आप लोगों को हृदय से धन्यवाद देती हूँ, विशेषतः सभानेत्री महोदया को, जिनकी असीम अनुकम्पा और अनुपम गुणों का हम वर्णन नहीं कर सकते !

[हरीश इस वाक्य की स्पष्ट और सफल समाप्ति पर काफी खुश जान पड़ते हैं, लेकिन सहसा कुछ याद आ जाने पर रहीम की ओर उन्मुख होकर :]

हरीश नन्दन : (**आहिस्ता से**) रहीम, उसका इंतज़ाम किया न ?... वही ।

(हथेलियां मिलाकर संकेत करता है ।)

रहीम : (**और भी आहिस्ता से**) जी हुजूर, सब ठीक है ।

(भाषण जारी हो गया है ।)

हरीश नन्दन : (**उसी तरह**)...तुम ज़रा खुद जाकर देख आओ !

(रहीम जाता है, उधर भाषण जारी है ।)

मोहिनी : लाट साहब की धर्मपत्नी होते हुए भी आपने इतना कष्ट उठाया कि इस नन्हीं सी संस्था में पधारीं ! यही इस बात का द्योतक है कि शिक्षा और बच्चों की प्रगति में आपकी कितनी दिलचस्पी है ।

[हरीश के हाथ ताली बजाने के लिए उठते हैं, लेकिन जान पड़ता है सभा के लिए वह वाक्य अधिक मुश्किल साबित हुआ । जो भी हो करतल-ध्वनि की अनुपस्थिति से हरीश को कुछ निराशा तो अवश्य हुई है । खैर शायद आगे चलकर ढंग ठीक हो, इसीलिए हरीश हाथ वाले कागज को, जिसमें शायद भाषण की प्रतिलिपि है, गौर से पढ़ते हैं और मिलान करते जाते हैं ।']

मोहिनी : इस छोटे नगर में आप जैसी—सम्मान्य महिलाओं के तो दर्शन ही नहीं होते और......

[नेपथ्य से किसी एक व्यक्ति के ताली बजाने की आवाज़ आती है, हरीश चौंक उठते हैं। थोड़ी देर तक वह ताली अकेली ही बजती रहती है, फिर कुछ बच्चों की तालियों की ध्वनि उसमें मिल जाती है। लेकिन अध्यापिकाओं के स्वर...'चुप, चुप...बन्द करो !' इत्यादि के बाद फिर से सभा भवन शान्त हो जाता है। कुछ खखारने के बाद मोहिनी पहले से कम विश्वास भरे स्वर में भाषण जारी रखती है। हरीश की गति इस दौरान में सांप-छछुंदर की-सी हो जाती है। चेहरे पर बेहद परेशानी, घुटने पर हाथ पटकते हैं, बाहर की ओर भी कदम बढ़ाते हैं, फिर लाचारी के साथ कुर्सी पर बैठ जाते हैं और कान लगाकर सुनते हैं।]

मोहिनी : और इसीलिए हम उचित रीति से आपका सत्कार नहीं कर पाये। आशा है आप हमारी कमियों की ओर ध्यान न देंगी। अब मैं इस पाठशाला के छोटे से किन्तु कठिनाइयों से बिंधे जीवन का थोड़ा-सा ज़िक्र करके अपना भाषण समाप्त करूँगी।

[फिर वही अकेली ताली, जिसकी प्रत्येक ध्वनि हरीश के कानों में बिच्छू के डंक की तरह लगती है और वह रह-रहकर कुर्सी से उछल-सा पड़ता है ! कभी माथे को पकड़ता है, कभी बाहर की ओर भागता है।]

हरीश नन्दन : (**दबी आवाज़**) रहीम, रहीम.........वह भी कम्बख्त वहीं जाकर मर गया ! सब ढेर कर दिया !

मोहिनी : (**फिर खखार कर कुछ हिम्मत के साथ**) माफ़

कीजिएगा। आप लोग शायद उकता गई हैं, लेकिन मैं थोड़ी ही देर में समाप्त कर दूंगी......

[**फिर वही ताली, और इस बार बच्चों की करतल ध्वनि भी शामिल हो जाती है। अध्यापिका जी 'चुप-चुप!' कहकर शान्त करती हैं। हरीश फिर बेताबी से पुकारता है, 'रहीम, रहीम' कागज हाथ से गिर गया है। मोहिनी भी इन विघ्न-बाधाओं की आदी हो गई जान पड़ती है।**]

मोहिनी : तो मैं कह रही थी इस पाठशाला का जीवन छोटा ही है! दो बरस के अन्दर ही यहाँ की लड़कियों ने कितनी उन्नति कर ली है, इसका तो नमूना आप लोग देख ही चुकी हैं! सभानेत्री महोदया ने स्वयं अपने भाषण में इन लड़कियों के काम और स्कूल की पढ़ाई का उल्लेख करने की कृपा की है।

[**करतल ध्वनि के लिए रुकती है, हरीश भी उत्सुकता से कान लगाये बैठा है, मगर हाय री नाउम्मेदी! एक भी ताली नहीं** बजती!]

— : इसलिए हमारा इतना साहस है कि हम उन्हीं के सन्मुख अपनी माँगें भी पेश करें। दुर्भाग्यवश न इस स्कूल का अपना मकान है, (**फिर वही ताली**) न बैंक में स्कूल के नाम कोई बड़ी रकम ही जमा है, (**ताली**) और न स्टाफ ही काफी है। (**ताली**) मतलब यह है कि स्कूल क्या है। एक अनाथ बच्चा है!

[**इस बार ताली ज़ोर से बजती है, बच्चे भी शामिल हो जाते हैं। हरीश साहब बेकरार होकर चिल्ला उठते हैं 'बन्द करो, बन्द करो!' नेपथ्य में कुछ हलचल सी**

होती है, मोहिनी कुछ लड़खड़ाकर रुक जाती है। उद्विग्न मुद्रा में हेडमिस्ट्रेस का प्रवेश]

हेडमिस्ट्रेस : सर सर, आखिरी पन्ना !

हरीश नन्दन : आखिरी पन्ना ?

हेडमिस्ट्रेस : जी, मेम साहब की स्पीच का आखिरी पन्ना शायद आपके पास ही रह गया !

हरीश नन्दन : ग़ज़ब ! ...... (**भाषण की प्रति के लिए अपनी सभी जेबों में हाथ डालते हैं लेकिन वहां नहीं है**) पहले से सोच समझ कर देखा भी नहीं ! आप लोग भी खूब हैं !

(कुर्सी के ऊपर तलाश करते हैं।)

हेडमिस्ट्रेस : सर सर, देरी हो रही है !

हरीश नन्दन : यहीं तो था मेरे हाथ में। अभी तो पढ़ रहा था मैं...

हेडमिस्ट्रेस : वह तो नहीं है ऊपर वाली जेब में ?

हरीश नन्दन : जी, वह...वह मेरा रूमाल है !......हाँ, यह रहा... (**हेडमिस्ट्रेस के पैर के नीचे दबे हुए काग़ज पर निगाह पड़ जाती है**) आप खुद तो दबाये खड़ी हैं !

[हेडमिस्ट्रेस घबड़ा कर पैर के नीचे से काग़ज को उठाने के लिए झुकती हैं और उसी क्षण हरीश भी; दोनों का सिर टकरा जाता है ! हेडमिस्ट्रेस घबड़ा कर सिर उठाती हैं ।]

हेडमिस्ट्रेस : माफ़ कीजिएगा, सर !

[न जाने क्या समझ कर हेडमिस्ट्रेस झेंप कर कुछ मुस्करा भी देती हैं ।]

हरीश नन्दन : (**झल्लाकर काग़ज उठाकर उसमें से आखिरी पन्ना फाड़कर हेड मिस्ट्रेस को थमाते हुए**) लीजिए, लीजिए, फौरन जाकर मेम साहब को दे दीजिए फौरन !

[इससे पहले कि हरीश अपनी बात पूरी करे, नेपथ्य से मोहिनी की आवाज़ आती है ।]

मोहिनी : इतने शब्दों...इतना... इतना कहकर मैं अपना भाषण समाप्त करती हूँ ...और...और आप सब को—सब महिलाओं को धन्यवाद देती हूँ !....

[हरीश और हेडमिस्ट्रेस एक दूसरे की ओर देखते हैं, हरीश के चेहरे पर अपरिमित व्यथा है ।]

हेडमिस्ट्रेस : खतम भी हो गया ! उफ़ !

[तेज़ी से हाल में घुस जाती है थोड़ी देर बाद नेपथ्य से हेडमिस्ट्रेस की आवाज़ आती है]

— : अब जलसा समाप्त हो गया है ... देखिए आप लोग अपने-अपने स्थान पर बैठी रहिए ! जब तक लेडी साहबा हाल के बाहर न पहुँच जायँ ! शोर न मचाइए...बीच वाली महिलाएँ कृपया रास्ता दें ! ...जी इधर से... इधर से...

(नेपथ्य की हलचल कम होती जाती है ।)

हरीश नन्दन : (आप ही आप) औरतों का जलसा और बीस खटराग ! ...गवर्नर साहब का मामला है । जो भी दोष हो अफ़सर के मत्थे ! ......कहाँ का झंझट मोल ले लिया मैंने भी !

(रहीम का प्रवेश)

रहीम : हुजूर, लेडी साहबा बहुत खुश-खुश जा रही हैं !

हरीश नन्दन : लेडी साहबा खुश और खफ़ा तो बाद में होंगी, पहले तुम मुझे बताओ कि किस अहमक़ ने मेम साहब की स्पीच के दरम्यान ताली बजवाने का इंतज़ाम किया था ?

रहीम : जैसा हजूर ने फ़रमाया था—

हरीश नन्दन : जैसा हुजूर ने फ़रमाया था ! (तैश में) क्या मैंने यह फ़रमाया था कि जब मेम साहब रोयें तो ताली बजे ?

रहीम : मेम साहब रोयें ? हुजूर मेम साहब......

हरीश नन्दन : हाँ, हाँ मेम साहब स्कूल का दुखड़ा तो रो ही रही थीं और उधर जोरों के साथ ताली बज रही थी !... और...और जब वह लेडी साहबा की तारीफ़ कर रही थीं, तब सारा हाल गुमसुम, जैसे साँप सूंघ गया हो !... कुछ अक्ल भी है तुम लोगों में ? कहाँ है वह ?

रहीम : हुजूर बाहर ही है !

हरीश नन्दन : बुलाओ, इसी दम बुलाओ !

रहीम : हुजूर कसूर......

हरीश नन्दन : मैं कहता हूँ, फ़ौरन उसे हाज़िर करो !

[रहीम भीगी बिल्ली-सा बाहर जाता है और थोड़ी देर में एक बुर्केवाली औरत को साथ में लिये आता है। इस बीच में हरीश गुस्से में कभी कुर्सी पर बैठता है कभी घूमता है। बुर्केवाली जरा कद्दावर जान पड़ती है और कुछ झुकी सी पड़ती है !]

हरीश नन्दन : यही है क्या ? (**बुर्केवाली से**) बुर्का तो ऐसे ताना है जैसे तम्बू हो; मगर दिमाग की तीलियाँ भी कुछ कसी होतीं......

रहीम : हुजूर बात यह थी......

हरीश नन्दन : बात क्या थी ? क्या जो काग़ज़ मैंने दिये थे, उसमें मेम साहब का भाषण लिखा हुआ नहीं था ?

रहीम : जी था तो......

हरीश नन्दन : क्या उसमें लाल पेन्सिल से उन स्थानों में निशान नहीं लगे थे जहाँ तालियाँ बजानी थीं ?

रहीम : जी थे तो, लेकिन......

हरीश नन्दन : लेकिन क्या ?......बुर्के के अन्दर शायद इतना अंधेरा था कि लाल निशान सफेद हो गये।

रहीम : हुजूर असल बात यह है कि इसे पढ़ना-लिखना आता ही नहीं !

हरीश नन्दन : (**मानो उबल पड़ता हो**) क्या ! पढ़ना-लिखना ही नहीं आता ? तो किसने इसे तय किया था ? (**बुर्के-वाली से**) कितने रुपये मिले हैं तुम्हें ?

रहीम : हुजूर......

हरीश नन्दन : बताओ कितने रुपये मिले हैं ?... (**जवाब नदारद !**) ...क्या मुंह में ताला लगा है ? जवाब दो।

[**उन्मुक्त विहंग की भांति उल्लासपूर्ण गति से स्मितवदना मोहिनी का प्रवेश !**]

मोहिनी : किस पर गरम हो रहे हो ? वहाँ नहीं चलोगे ?

हरीश नन्दन : कहाँ ?

मोहिनी : (**बुर्केवाली पर निगाह पड़ते ही कुछ चकित-सी रह जाती है**) अरे यह तो वही है ?

हरीश नन्दन : हां यह वही है जिसने एक नहीं सात दफ़े तुम्हारे भाषण के बीच में बेमौजूं ताली बजाई थी ! अहमक ! जाहिल !......

मोहिनी : हाँ, भई, भद्द तो इसने करा ही दी, हालांकि......

हरीश नन्दन : भद्द ! अरे इस कम्बख्त ने नाक ही तो कटवा दी, लेडी साहबा के सामने ! कैफियत पूछता हूँ तो जवाब नदारद....देखूं तो इस जाहिल की सूरत ! रहीम, खोल दो इसका बुर्का......

मोहिनी : हें हें, यह क्या गजब करते हो ? इतनी बेइज्जती क्यों करते हो इस बेचारी की ?

हरीश नन्दन : बेचारी ?.....यह बेचारी नहीं है **(बुर्के वाली के करीब जाकर उसका बुर्का-फुर्ती के साथ खोलते हुए)** यह है बेचारा ! मूंछों वाला बेचारा !

[बुर्काफ़ाश होते ही नजर पड़ता है गंगा जमुनी मूंछों वाला एक पुरुष, करुणा और विनम्रता का मूर्तमान स्वरूप ! हाथ जोड़ कर याचना की मुद्रा में खड़ा है ! हरीश बुर्का खोलते वक्त उसकी तरफ़ न देख कर मोहिनी की ओर देखता है ऐसे ही जैसे कोई कलाकार अपनी अनुपम कलाकृति को प्रशंसोन्मुख दर्शकों को दिखा रहा हो ! लेकिन मोहिनी उसके चेहरे को देखकर चौंक पड़ती है !]

मोहिनी : अरे, इसका चेहरा तो देखो ! यह तो वही बुड्ढा जान पड़ता है जो उस रोज अपने मुकदमे की सिफ़ारिश के लिए बंगले पर.........

हरीश नन्दन : हैं ! **(बुर्के वाले की तरफ़ देखता हुआ पीछे हटता जाता है)** यह—भोला सिंह है ? भो...ला... सिं...ह **(कुर्सी के पास पहुँच कर रुक जाता है और रहीम की ओर आंखें गड़ाकर देखता है !)** रहीम यह तो भोला सिंह है ?

रहीम : जी...जी...हुजूर......

हरीश नन्दन : वही, भोला सिंह जिसका मुकदमा मैंने खारिज कर दिया था ?

भोला सिंह : **(ऐसे स्वर में जिसमें व्यंग्य की गंध भी नहीं है)**

हुजूर के इकबाल से जज साहब की अदालत से मुकदमा तो बहाल हो गया ! ......

हरीश नन्दन : हूँ...तो तुमने हमसे बदला लेने और हमें ज़लील करने का यह तरीका सोचा ? क्यों ?

भोला सिंह : (**बहुत आजिजी के साथ**) नहीं, हुजूर आप ऐसा सोचिएगा तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा ! जज साहब की अदालत से हो, चाहे हाई कोरट से, हुजूर की निगाह के बिना तो इस इलाके में एक पत्ता भी नहीं खड़क सकता ।

हरीश नन्दन : तो फिर तुम्हारे इस बेहूदापन की वजह ?

भोला सिंह : हुजूर मैं तो आया था सलाम करने, रहीम भाई ने बताया कि पाँच मिनट के लिए किसी की ज़रूरत है, बुर्का लगाकर ताली बजाना है । मैंने सोचा हुजूर और मेम साहब की खिदमत का इससे अच्छा मौका कब मिलेगा ? मुझे क्या मालूम था कब ताली बजानी है ? जब देखा सब लोग चुप हैं, कुछ चहल-पहल चाहिए, तभी ताली बजा दी !

[मोहिनी यह सब सुनते-सुनते, मुंह में रूमाल दबाकर हँसी रोकती हुई कुरसी पर बैठ जाती है ।]

रहीम : हुजूर कुसूर इसका नहीं है । असल में मौके पर कोई और आदमी तैयार ही नहीं हो रहा था !

हरीश नन्दन : रहीम, तुमको आदमी तैयार कराने के लिए नाज़िर जी ने कितने रुपये दिये थे ?

रहीम : (**हिचकता हुआ**) हुजूर...एँ....

हरीश नन्दन : कितने रुपये दिये थे । (**झड़क कर**) जवाब दो !

रहीम : हुजूर । पच्चीस !

हरीश नन्दन : और वे पच्चीसों रुपये तुम्हारी जेब में गये ? भोला-सिंह ने तो मुफ्त काम किया होगा ? यही बात थी न ?

रहीम : हुजूर......हूँ......

हरीश नन्दन : रहीम !

रहीम : हुजूर !

हरीश नन्दन : कितने बरस से तुम अरदली हो ?

रहीम : हुजूर......१५ बरस होने आये !

हरीश नन्दन : आज से तुम अरदली से हटकर दफ्तर का काम करोगे ! न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी !

रहीम : इस बार माफ़ी दी जाय हुजूर, सरकार का......

हरीश नन्दन : मैं कुछ नहीं सुनना चाहता...निकल जाओ मेरी आँखों के सामने से......

रहीम : हुजूर......

हरीश नन्दन : अभी, इसी दम !

(**दोनों जाते हैं।**)

-- : बेईमान कहीं का...मट्टी ही ख्वार करा दी......

मोहिनी : (**हँसते हुए**) अरे भई, तुम तो बेकार इतना बिगड़ रहे हो ! ऐसी तो कोई बात हुई नहीं है कि तुम इतना आपे से बाहर हो जाओ !

हरीश नन्दन : खूब ! यानी आप हँस रही हैं !......

मोहिनी : बात ही हँसने की है......मुझे तो गुमान तक नहीं हुआ कि देवियों के जलसे में बुर्के के अन्दर यह देवता विराजमान हैं !...अगर थोड़ी अक्लमन्दी से इसने काम लिया होता तब तो मामला बना-बनाया था !

हरीश नन्दन : वही तो मलाल है। इतना अच्छा प्लान था ! सब ढेर

हो गया ! क्या करें, तकदीर ही में लाट साहब की नाराज़गी लिखी थी......

मोहिनी : इतने मायूस न बनो !

हरीश नन्दन : (**खीझ के साथ**) तुम तो बहुत खुश मालूम देती हो !

मोहिनी : मेरी बात पूरी सुनो तो तुम भी खुश हो जाओगे !

हरीश नन्दन : सुनें।

मोहिनी : लेडी साहबा बहुत खुश थीं।

हरीश नन्दन : उस अटपटे भाषण के बावजूद ?

मोहिनी : भाषण ही से तो बहुत प्रसन्न हुईं। बोलीं कि जब मैं तुम्हारे बराबर थी तो मैं तो एक वाक्य भी पूरा नहीं बोल सकी, किसी दूसरे से पढ़वा दिया था अपना भाषण। तुमने तो बहुत मज़े का भाषण दिया है।

हरीश नन्दन : (**आंखों में चमक**) सच ?

मोहिनी : फिर कुछ शक्ल-सूरत की तारीफ करने लगीं, बोलीं कि तुम्हारे मियां बहुत लकी (**भाग्यवान**) हैं !

हरीश नन्दन : (**जैसे बांछें खिली हों**) सच ?

मोहिनी : (**कुछ शर्माकर**) क्योंकि उन्हें तुम्हारे जैसी बीवी मिली है। सर्विस में ऐसी बीवी होना तरक्की की उम्मीद बढ़ा देता है।

हरीश नन्दन : मोहिनी, यह तो कमाल की बात हो गई ! हो सकता है लाट साहब कुछ मुझ में दिलचस्पी लेने लगें !...

मोहिनी : वही तो ! लेडी साहबा कहने लगीं कि राजधानी में बुजुर्ग महिलाएँ तो कई हैं ! ज़रूरत है कुछ कम उम्र के जोड़ों की......

हरीश नन्दन : (**हाथ पर हाथ मारकर**) मार ली बाजी ! राजधानी की सेक्रेटेरिएट में अक्सर जगह खाली होती रहती

है...या....या....लाट साहब के निजी दफ्तर में भी कुछ ऊँचे ओहदे हैं....वहाँ पहुँचने पर तो तुम्हें भी लेडी साहबा के कुछ काम आने का मौका मिल जायगा !

मोहिनी : तो फिर जल्दी चलो !

हरीश नन्दन : तुम तो समझ बैठीं कि लाट साहब अभी हमारे हाथ में हुकुम दे देंगे !

मोहिनी : मैं कह रही थी कि स्टेशन चलो......

हरीश नन्दन : (**घड़ी देखता हुआ**) लाट साहब की गाड़ी तो दो घंटे बाद आती है !

मोहिनी : लेडी साहबा ने कहा है कि तुम लोग जल्दी आ जाओ। चाय हमारे सैलून में ही पीना।

हरीश नन्दन : भई वाह मोहिनी ! (**कमर में हाथ डालकर झूमते हुए**) तुमने तो मेरा मामला ही साध दिया !

मोहिनी : (कमर छुड़ाते हुए) हटो भी ! क्या बचपना करते हो !.......

हरीश नन्दन : लाट साहब कह रहे थे कि हम लोग बिल्कुल बच्चे लगते हैं !

मोहिनी : तभी शायद बातों-बातों में लेडी साहबा ने मेरी उम्र भी पूछ ली ! मैंने कहा १९......

हरीश नन्दन : (**कुछ चौंक कर**) १९ ?

मोहिनी : हाँ १९ बरस.....क्यों, सोच में क्यों पड़ गये ?

हरीश नन्दन : तुमने कहा तुम्हारी उम्र १९ बरस है ?

मोहिनी : तो क्या ग़लत कहा ? देखो पैदायश का सन्—

हरीश नन्दन : मोहिनी सच बताओ, तुम्हारी उम्र १९ बरस ही है ?

मोहिनी : यह लो ! यह बात तो तुम्हें शादी होने से पहले पूछ लेनी चाहिए थी। देखो पैदायश का सन्......

हरीश नन्दन : मोहिनी तुम्हें ठीक याद है ?

मोहिनी : यह खूब रही ! बात पूरी सुनते नहीं, अपनी ही कहे चले जा रहे हो ! देखो पैदायश का सन्......

हरीश नन्दन : (**कंधे हिलाकर कुर्सी पर बैठते हुए**) कुछ भी हो, मैंने तो तुम्हारी उम्र २२ बरस बता दी !

मोहिनी : (**कुंचित भ्रू**) २२ बरस बता दी ! किसे ?

हरीश नन्दन : लेडी साहबा को !

मोहिनी : (**रोष बढ़ रहा है**) तुमने लेडी साहबा को मेरी उम्र २२ बरस बताई ? कब ?

हरीश नन्दन : उन्हें अस्पताल लाते वक्त मोटर में ।

मोहिनी : (**उबल कर**) तुम्हें शर्म तो न आई होगी मुझे बुढ़िया बनाते वक्त !

हरीश नन्दन : बुढ़िया ?

मोहिनी : बुढ़िया नहीं तो क्या ? मैं २२ बरस की लगती हूँ ? (**भाव और शब्द एक प्रवाह में !**)ज़लील करने का और कोई तरीका नहीं मिला था तुम्हें ? यह कौन जन्म का बदला लिया है ?....तुम्हें मेरी यह क़दर करनी थी तो शादी से पहले क्यों न कह दिया था ? तुम्हारे लिए किसी बुढ़िया बीवी का ही इन्तज़ाम कर देती ! मेरी यह बेइज्ज़ती तो न होती—चार जनों के सामने !

हरीश नन्दन : अरे भई मेरा मतलब......

मोहिनी : अब मैं कौन सा मुंह दिखाऊँगी लेडी साहबा को ? वह भी सोचेंगी कि कैसी बीवी है और कैसे मियाँ ! मैं पूछती हूँ कि तुम्हें कौन सी बात दीखी मेरे अन्दर जो तीन बरस तुमने जोड़ दिये मेरी उम्र में ? चेहरा ?

चाल ? आँखों की नज़र ? (रुआंसी) मेरा तो जी करता है अपने घर चली जाऊँ ! तुम्हारे यहाँ रहकर तो फिकर ही में आदमी मर जाय। देहात की ज़िन्दगी, मकान हैं तो सौ साल पुराने, चपरासी हैं सो पच्चीस साल पुराने, फर्नीचर पुराना, सारी जिन्दगी पर पुरानापन छाया हुआ है ! इसमें तुम्हें सूझेगा क्या ? बुढ़ापा !

हरीश नन्दन : मैं कहता हूँ, सुनोगी भी......

मोहिनी : ऐसे भी आदमी हैं जो अपनी बूढ़ी बीवियों को भी जवान दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं ! मि० अरुण को ही देखो, उनकी बीवी से जब पूछो तो उम्र बतायेंगी २६ बरस ! न जाने कब से वह अपनी आयु २६ बरस बताती आ रही हैं, मगर मजाल क्या कि मि० अरुण ने कभी चूं भी की हो !

हरीश नन्दन : लेकिन मि० अरुण के बाल सफेद हो चले हैं !

मोहिनी : उससे क्या होता है ? दिल तो उनका बूढ़ा नहीं हुआ। मगर तुम तो कभी-कभी ऐसी बातें करते हो जैसे भीतर से बूढ़े हो चले ! दिल में उमंग रखो तो बाहर की झुर्रियाँ जेल की सीकचे नहीं बन सकतीं, अरमानों को रंगीन रखो तो बालों की सफेदी जवानी का सफेद कफ़न नहीं बन सकती। मैं पूछती हूँ, आदमी बुजुर्ग बनने के लिए क्यों आतुर हो ? बुजुर्गीयत तो प्रतिध्वनि है कमजोर, धीमी होती हुई आवाज़ की, जो समस्याओं की चट्टानों से टकराकर बेबसी के साथ, सिसकती-सी वापस आती है। मैं चाहती हूँ हमारा जीवन बुलन्द आवाज़ों की झड़ी हो, एक के बाद एक

जानदार आवाज़ जो उन चट्टानों को ढाहती चले, उनसे टकराकर वापस न आय !......

हरीश नन्दन : (**जिसने अब अपने को सम्हाल लिया है और जो इस भाषण को मुस्कान मिश्रित संजीदगी के साथ सुनता रहा है**) हियर, हियर......हियर हियर !

[**ताली बजाता है। नेपथ्य से भी तालियों की आवाज़ आती है। हरीश फिर ताली बजाता है और दुबारा नेपथ्य से तालियों की आवाज़ें आती हैं**]

—— : कौन ? हेडमिस्ट्रेस हैं क्या ?

(**हेडमिस्ट्रेस का प्रवेश**)

हेडमिस्ट्रेस : सर, वह....अखबार वाले बाबू आये हैं और मेम साहब के भाषण की रिपोर्ट माँगते हैं !

हरीश नन्दन : उनसे बोलिए कि हम एक नहीं दो-दो भाषणों की रिपोर्ट देंगे ।

मोहिनी : दो दो ?

हरीश नन्दन : हां, मोहिनी, तुम्हारा दूसरा वाला भाषण भी लाजवाब रहा है ! क्यों न हेडमिस्ट्रेस साहबा, आपको तो पसद आया न ? आपने तो तालियाँ भी बजाईं ?

मोहिनी : तो आप छिपकर हम लोगों की बातें सुन रही थीं ?

हेडमिस्ट्रेस : (**कुछ हिचकिचाकर ! कभी हरीश कभी मोहिनी की तरफ़ देखती हुई**) जी, जी, मैंने समझा....समझा ...कि

मोहिनी : आपने खूब समझा...आप लोग......

हरीश नन्दन : कोई बात नहीं हेडमिस्ट्रेस साहबा, आप अखबार-नवीस से कह दीजिए कि हमारे बंगले पर मिलें (**हेडमिस्ट्रेस छुटकारा सा-पाकर पृष्ठद्वार की ओर जाती हैं।**)

हरीश नन्दन : और देखिए हमारी मोटर इधर पीछे की तरफ़ ही भेज दीजिए !

(हेडमिस्ट्रेस का प्रस्थान)

— : क्यों बिगड़ती हो ? तुम्हारा दूसरा वाला भाषण इतना ज़ोरदार रहा कि थोड़ी देर और बोलतीं तो यहाँ हजारों की भीड़ ही जमा हो जाती...बस मोहिनी मैंने तय कर लिया !

मोहिनी : क्या तय कर लिया ?

हरीश नन्दन : यही कि अगले इलेक्शन में तुम्हें असेम्बली की सीट के लिए खड़ा किया जायगा। गाँव-गाँव में तुम्हारे ज़ोरदार भाषण होंगे; हज़ारों की तादाद में स्त्री और पुरुष जमा होंगे। लाखों पोस्टर तुम्हारी तसवीरों के साथ बटेंगे और फिर एक दिन घोषणा होगी श्रीमती मोहिनी नन्दन एम०......एल०......ए०......

(रहीम का प्रवेश)

मोहिनी : धत्—

रहीम : हुजूर, मोटर आ गई है।

हरीश नन्दन : रहीम, हम आज बहुत खुश हैं। और मेम साहब भी !

रहीम : हुजूर !

हरीश नन्दन : इसलिए मेम साहब की मंशा है कि तुम फिर से अरदली के काम पर बहाल किये जाओ !

मोहिनी : मेरी मंशा ?

रहीम : हुजूर का इकबाल दिन दूना रात चौगुना हो !...ये कागजात मोटर में रख दूं हुजूर ?

हरीश नन्दन : हाँ !

. (रहीम का प्रस्थान)

हरीश नन्दन : चलो ! मेरी होने वाली एम० एल० ए०, लेडी साहबा की चाय पर जाना है ।

मोहिनी : बातों को टालना तो तुम खूब जानते हो । बात तो हो रही थी कुछ और तुमने छेड़ दी दूसरी तान......

हरीश नन्दन : अरे, वह बात ? वह तो मैं लेडी साहबा से कह दूंगा कि मैंने २२ तो अपनी उम्र बताई थी, तुम्हारी वही १९ है ! कह दूंगा मैं उनके सवाल को ग़लत समझा था !

मोहिनी : (**आगे चलते हुए**) तुम अकसर बातों को ग़लत समझते रहते हो......

हरीश नन्दन : लेकिन......मोहिनी ! (**रुकता है**) मोहिनी ! ... एम० एल० ए० बनने के लिए तो ... उम्र २५ वर्ष की होनी चाहिए ।

मोहिनी : एँ ?

हरीश नन्दन : और तुम अभी १९ बरस की हो ।

[**दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं, हरीश किंचित् हँसता है, मोहिनी भी हँसती है, धीरे-धीरे करके दोनों अट्टहास में शामिल हो जाते हैं ।**]

(**पर्दा गिरता है ।**)

ओ मेरे सपने

पात्र

मगनचन्द
सूरजभान
गोपीनाथ
कंछी
विमल
सरिता

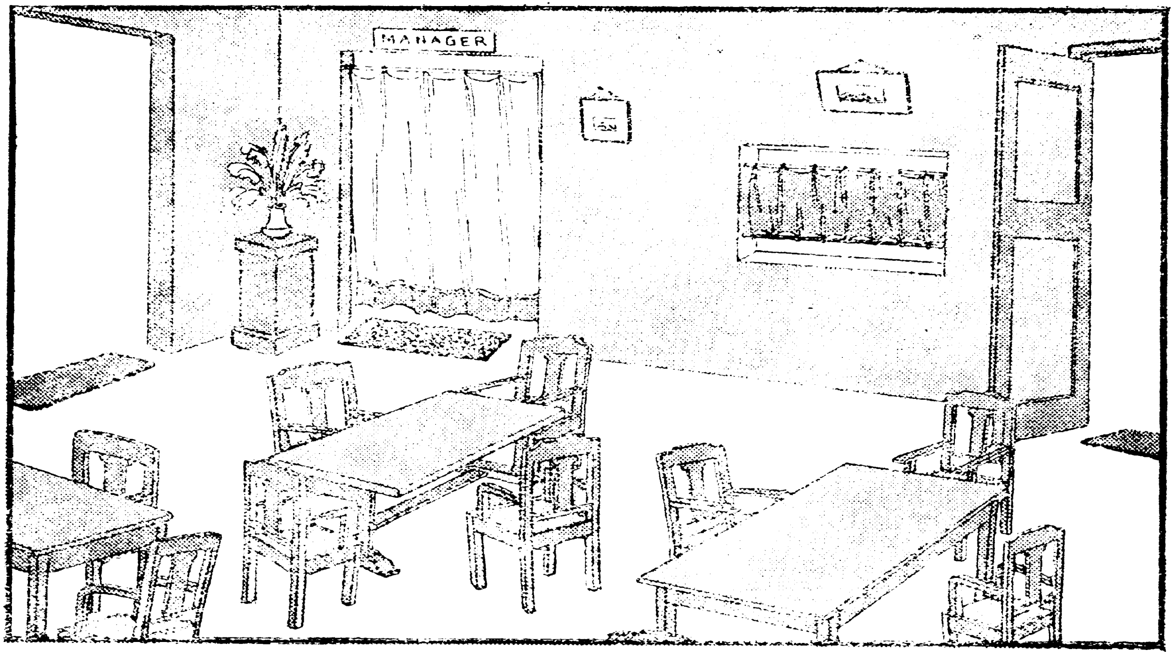

ओ मेरे सपने—पहला दृश्य

[स्थान, किसी भी ऐसे नगर का एक रेस्तरां या काफी हाउस जहाँ कोई विश्वविद्यालय है। रेस्तरां के इस हिस्से में तीन-चार मेज हैं, हरएक के चारों तरफ़ कुछ कुर्सियाँ। पीछे एक दरवाज़ा है, जिस पर पर्दा टँगा है और ऊपर लिखा है—'मैनेजर'। एक नौकर सामान लेकर उसी दरवाजे से आता-जाता है। बाकी लोगों के लिए आने-जाने का मार्ग दाहिनी ओर है। दीवारों पर विविध भाँति के कैलेंडर और पोस्टर लगे हैं। संध्या बीत चुकी है, लगभग ८।। बजने को आये हैं। गाहक छँट गये हैं, बचे हैं तीन शौकीन जो आदत से मजबूर होने के कारण रेस्तरां को घोंसला माने हुए हैं। तीनों युवक हैं, चाय का दौर चल रहा है और बुलन्द आवाज़ में वाद-विवाद भी।]

सूरजभान : नहीं मगनचन्द, नहीं, नहीं। मालिनी का मुकबिला माला क्या, कोई भी फ़िल्म-एक्ट्रेस नहीं कर सकती। याद नहीं है, जब मालिनी ने मेवानन्द की हथेली पर एक पैर और घोड़े पर दूसरा पैर रखकर दो गाने की लड़ी गाई थी?

गोपीनाथ : वही न ? (**गाता हुआ**)

'भोले भोले, मन के घोड़े,
एजी, मुझको उड़ाये चलो ! *

सूरजभान : और तभी घोड़ा भाग निकलता है ।

मगनचन्द : मालिनी को लेकर ?

सूरजभान : जी नहीं । इसके मानी यह हैं कि आपने इस फ़िल्म को देखा ही नहीं ।

मगनचन्द : बात यह है सूरजभान, कि उन दिनों छमाही इम्तहान हो रहे थे ।

गोपीनाथ : उससे क्या होता है ? हम तो इम्तहान के दो पेपरों के बीच मैटिनी शो देख चुके हैं ।

सूरजभान : मतलब यह कि आप नहीं जानते कि घोड़े के भाग निकलने पर मालिनी कहाँ गिरती है ?

मगनचन्द : (**उत्सुकता से**) कहाँ गिरती है ?...बताओ न, गोपीनाथ !

गोपीनाथ : (**विजयोल्लास-सहित**) मेवानन्द की गोद में ।

मगनचन्द : गोद में ?

सूरजभान : (**उमंगपूर्ण स्वर**) मेवानन्द एक हाथ से उसकी टाँगें सँभालता और दूसरे से उसकी बाँहें पकड़ता है ।

मगनचन्द : बाँहें पकड़ता हैं ?

गोपीनाथ : (**दूसरा विजयोल्लास**) और मालिनी सहारा लेने के लिए मेवानन्द की गर्दन में हाथ डाल देती है ।

मगनचन्द : (**मानो उछल ही पड़ेगा**) गर्दन में हाथ ?

सूरजभान : जी ! और मेवानन्द की ओर हसरतभरी नज़र से देखने

***प्रसिद्ध फिल्मी गीत 'गोरे गोरे मन के भोले' की तर्ज़ पर ।**

लगती है ।......बड़ी ही प्यारी सूरत लगती है उन दोनों की उस समय !

मगनचन्द : (**गहन उत्सुकता से**) तब...उसके बाद...क्या होता है ?

सूरजभान : (**कुछ सोचता-सा**) उसके बाद...

मगनचन्द : (**चरम-उत्सुकता से**) हाँ, उसके बाद......

(**रेस्तराँ के नौकर कंछी का प्रवेश**)

कंछी : बाबू जी, गरम चिप्स तैयार हैं ।

मगनचन्द : (**कुछ झुंझलाहट से**) गरम चिप्स ! ......ऊँह !

सूरजभान : (**कुछ आश्वस्त होकर**) गरम चिप्स !

गोपीनाथ : चिप्स !.....अच्छा ले आओ कंछी ।

(**कंछी जाता है ।**)

मगनचन्द : लेकिन गोपी, बताओ न, उसके बाद मालिनी और मेवानन्द क्या करते हैं ?

गोपीनाथ : उसके बाद......उसके बाद तो वही गाना होता है।

मगनचन्द : (**निराशोच्छ्वास**) गाना ! बस ?

गोपीनाथ : वही गाना । (**गाता हुआ**)

"मैं तुझको कार ले दूंगा, ओ चंदा ।"*

(**कंछी चिप्स की तश्तरियां रखकर चला जाता है ।**)

सूरजभान : बस उसी सीन को देखकर मैंने यह बुशशर्ट पहननी शुरू की ।...देखते नहीं, मालिनी की तसवीर इसकी पाकिट पर छपी हुई है । 'दिल के आइने में है तस्वीरे यार, जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली !'

***फिल्मी गीत 'मैं तुमको प्यार कर लूंगा, ओ चन्दा, चन्दा' की तर्ज पर ।**

मगनचन्द : मैंने भी अपनी पतलून का स्टाइल बदल लिया, जब से माला को देखा—'फव्वारा' फिल्म में।

गोपीनाथ : वही न जिसमें वह पतलून पहने हुए कीचड़ भरे खेतों के बीच से गुजरती है ?

मगनचन्द : क्या अदा है माला की उस समय। पतलून की जेबों में हाथ, आँखों में अरमान, पैरों में चंचलता और होठों पर गीत। **(गहरी सांस लेता हुआ)** हाय री माला ! तुझे भूलने के लिए मैं आँखें बन्द करता हूँ **(आंखें बन्द करता है)** तो तेरी वह बाँकी छवि मेरी बन्द आँखों में भी चमक कर मेरे दिल में और भी अँधेरा भर देती है। **(बन्द आंखों झूमता है)** माला ! ... माला !

सूरजभान : और मालिनी। मेरी मालिनी ! ... हे मधुर मालिनी, तेरी तसवीर की झांकी लेते ही **(बुशशर्ट पर छपी तसवीर को देखता है)** मैं इतना मदहोश हो जाता हूँ कि कोई चाहे तो मेरा आपरेशन कर दे। **(देखते-देखते आंखें झपक जाती हैं)** मालिनी ! मालिनी !

गोपीनाथ : दोनों-के-दोनों अपनी-अपनी आराध्या के ध्यान में मग्न हैं। अब मैं क्या करूँ ?....हाँ 'फव्वारा' फिल्म में हीरो का दोस्त क्या करता है ? क्या करता है ?...वह लड़की के बाप यानी सेठ के पास जाकर कहता है—'सेठ, तुम्हारे सीने में दिल है ? दिल में खून, खून में रंगत, रंगत में—लेकिन, लेकिन यहाँ न तो माला का बाप है, न मालिनी का पापा—तब ... तब तो गरम चिप्स की ही एक प्लेट और मँगा लूं।... कंछी ! ओ कंछी !

[दाहिने दरवाजे से एक अद्यतन सभ्य महिला का प्रवेश ! नैसर्गिक सौंदर्य के होते हुए भी लिपस्टिक,

पाउडर इत्यादि का आवरण स्पष्ट है, लेकिन अतिशय नहीं। पोशाक—शलवार, कमीज़, कढ़ी हुई वास्कट या जो भी तत्कालीन फैशन है। कमसिन है या जान पड़ती है, यह तो आजकल के सौंदर्य-उपादानों की बदौलत हम-आप निश्चित रूप से कह ही नहीं सकते। हां, महिला के रूपवती होने में संदेह की गुंजाइश नहीं है। हाथ में पर्स, नये ढंग का बटुआ है। और नाम ? नाम रख लेते हैं सरिता !]

सरिता : (गोपीनाथ के निकट आकर) क्या आप ही इस रेस्तरां के मैनेजर हैं ?

गोपीनाथ : (इस अप्रत्याशित सौंदर्यवर्तुल की लपेट में आता हुआ-सा) मैं...मैं...मैनेजर। (आंखें सरिता पर गड़ी हैं, लेकिन मगनचन्द को एक हाथ से हिलाता हुआ) मगनचन्द, मगन ......!

[मगन आंखें खोलकर भौंचक्का-सा सरिता को देखता है।]

सरिता : क्या ये मैनेजर हैं ?

गोपीनाथ : (वही दशा) मैनेजर। (इस बार सूरजभान को हिलाता है) सूरजभान ! सूरज !

सरिता : तो क्या (सूरजभान की तरफ इशारा करती हुई) ये मैनेजर हैं ?

गोपीनाथ : मै...मैनेजर। (कंछी आता हुआ दीखता है।) हाय, मैं...मैनेजर क्यों न हुआ !...कंछी !

कंछी : (सरिता के निकट आकर) क्या हुकुम है बीबीजी ? चाय लाऊँ ?

सरिता : नहीं। हमें एक पैकिट काफी की जरूरत है। सुना है, इस रेस्तरां में काफी ताजा पीसकर सप्लाई की जाती है।

कंछी : जी......जी......हां। अन्दर आफिस में मैनेजर साहब बैठे हैं। मैं अभी उन्हें खबर देता हूँ।

सरिता : मैनेजर साहब आफिस में हैं?...हूँ। (**गोपी और उसके साथियों पर प्रतारणा-पूर्ण दृष्टि डालती हुई**) ठहरो, मैं भी चलती हूँ।

(**कंछी और सरिता मैनेजर के आफिस में घुस जाते हैं।**)

सूरजभान : गोपी, गोपी! यह मैंने क्या देखा?

गोपीनाथ : काश, मैं मैनेजर होता।

मगनचन्द : गोपी यह स्वप्न था या सत्य?...ठीक वही सूरत, ठीक वही मुद्रा!

सूरजभान : (**मगन चन्द पर चुनौती पूर्ण दृष्टि डालते हुए**) क्या मतलब तुम्हारा, ठीक वही सूरत, ठीक वही मुद्रा! क्या तुम समझते हो कि खुशबू की महक की तरह जो यह लड़की अभी यहां आई थी वह......

मगनचन्द : ठीक माला की तरह है! बिल्कुल वही छबि, वही बाँकी मुस्कान, वही......

सूरजभान : मगनचन्द, तुम्हारी आँखें हैं या बटन? क्या तुम देख नहीं पाते कि यह जो लड़की बिजली की तरह चमकी और आशा की तरह ओझल हुई, वह और कोई नहीं, हजारों की आँखों की तारा और मेरी कल्पना की देवी, मालिनी की हूबहू तसवीर थी। अरे, मैंने जो आँख खोलीं तो समझा कि इस बुशशर्टवाली तसवीर की छाया किसी शीशे में पड़ रही है!

मगनचन्द : सूरजभान, तुम मेरे दोस्त हो, लेकिन इसके मानी यह नहीं कि मैं तुम्हें एक अनिंद्य सुन्दरी की निन्दा करने दूं। भला जो माला के अनुरूप है, उसकी तुलना क्या मालिनी-जैसी छिछोरियों से की जानी चाहिए ?

शूरजभान : मगनचन्द, याद है 'पोखर की सुन्दरी' फिल्म में हीरो ने उस बकवासी का क्या इलाज किया था ?

मगनचन्द : क्या किया था ?

सूरजभान : उसने उसे बायें हाथ से उठाकर उछाल दिया था जिससे वह पेड़ की डाल पर जा अटका था...। आज मालिनी की झलक पाकर मेरे खून में भी वही जोश उमड़ रहा है ।

मगनचन्द : सूरजभान, तुम्हारी ये खोखली धमकियाँ मुझे डिगा नहीं सकतीं। मैंने न जाने कितनी बार माला की खातिर अपना खून बहाया है—अनगिनती सपनों में !

[दोनों एक दूसरे की ओर संघर्ष-कटिबद्ध मुद्रा से देखते हैं और कमीजों की बाजू चढ़ाते हैं। परिस्थिति में तनाव और क्षण भर का नीरव।]

गोपीनाथ : दोस्तो, थोड़ा और, थोड़ा और !

सूरजभान : (**झुंझलाहट से**) क्या थोड़ा और ?

गोपीनाथ : (**सोत्साह**) तुम दोनों थोड़ा और लड़ो। एक दूसरे पर कुर्सियों से वार करो। और तब 'बीस महल' के हीरो की तरह तुममें से एक घायल हो जायगा। माथे से खून बहने लगेगा।

(**नाटकीय मुद्रा**)

मगनचन्द : दोनों के ?

गोपीनाथ : किसी एक के।...और तब मैं विश्वासपात्र मित्र की

तरह भागा-भागा जाऊँगा, और बुला लाऊँगा उसी खूबसूरत बला को, जो अभी अन्दर गई है। कहूँगा उससे... ..

सूरजभान : क्या कहोगे ?

गोपीनाथ : कहूँगा 'चलो मेरे साथ और देखो तुम्हारी नादान खूबसूरती ने क्या गज़ब ढाया है'।......बदहवास-सी वह दौड़ी आयगी। बाल बिखरे होंगे, मगर पाउडर जमा होगा। और आते ही वह गिर पड़ेगी।

मगनचन्द : कहाँ ?

गोपीनाथ : तुम पर मगनचन्द......या सूरजभान तुम पर !... जो भी घायल होगा......जिसके भी माथे पर से खून बह रहा होगा। (**दोनों अपना-अपना मस्तक सहलाते हैं, शायद खून हो !**) सिर गोद में ले लेगी। आहिस्ता से बालों को सहलायेगी।...शायद खून भी पोंछे।...मैं उसकी तरफ दर्दभरी नज़र से देखता होऊँगा और उसकी डबडबाई आँखें अपने घायल हीरो पर लगी होंगी।...और तब......

सूरजभान : (**चरमोत्सुकता से आप्लावित**) और तब ?

गोपीनाथ : और तब, दबे हुए, भीतरी आंसुओं से, गीले गले से, उसका मन्द, जादू भरा स्वर निकलेगा।......वही गाना......अरे वही गाना !

गाता है—

इक आम के टुकड़े चार हुए,
इक यहाँ गिरा इक वहाँ गिरा।
पर हाय तुझे क्या मिला सनम,
गुठली भी नहीं, गूदा भी नहीं।

छिलके पै भला क्यों फिसल पड़ा ?
मेरा दिल भी तो था, चिकना-सा घड़ा,
चिकना-सा घड़ा, चिकना-सा—*

[गाने के समाप्त होने से पहले ही मैनेजर के दफ्तरवाले दरवाजे से सरिता आती है और पीछे-पीछे चार पैकिट लिए हुए कंछी। गाना सुनकर सरिता कुछ ठिठकती है। तीनों को देखकर कुछ मुस्कराती है, फिर आहिस्ता से खखारकर दाहिने दरवाजे से बाहर निकल जाती है। पीछे-पीछे कंछी।

सहसा उसके ओझल होते हुए दुपट्टे पर सूरजभान और मगनचन्द की निगाह पड़ती है और गीत के जादू से मानो छिटककर वे खड़े हो जाते हैं और फिर एक साथ गोपी के हाथ पकड़कर झकझोरते हैं।]

सूरजभान : गोपी ! गोपी !

(गोपी गाये जा रहा है।)

मगनचन्द : गो...ओ...पी।

गोपीनाथ : (इस विघ्न से झुंझलाकर गाने को अधूरे में रोककर) क्यों गला फाड़ रहे हो ?......सारा मज़ा ही किरकिरा कर दिया।

मगनचन्द : अरे......वह......तो चली गई।

गोपीनाथ : वह ?

सूरजभान : नादान दोस्त से दाना दुश्मन अच्छा। न मुझे मालिनी मिली और......

मगनचन्द : न मुझे माला !

---

*प्रसिद्ध फिल्मी गीत 'इस दिल के टुकड़े हजार हुए', की तर्ज पर।

गोपीनाथ : तुम्हारा मतलब है कि जो लड़की अभी काफी लेने आई थी वह......वह चली भी गई ?

सूरजभान : जी हाँ।......और आप गाते ही रहे। (**मुंह बनाते हुए**) चिकना-सा घड़ा......चिकना-सा घड़ा।

गोपीनाथ : (**कुछ रुककर**) हूँ! (**सोचता हुआ**) लेकिन.... लेकिन यह हो कैसे सकता है ?

सूरजभान : क्यों नहीं ?

मगनचन्द : तुम भी गोपी......

गोपीनाथ : (**अधिकारपूर्ण स्वर में**) क्योंकि ऐसा किसी भी फिल्म में नहीं हुआ।......याद करो। हीरोइन सामने से निकल जाय और हीरो के कान पर जूं भी न रेंगे।

मगनचन्द : तुम अपने को हीरो समझते हो क्या ?

सूरजभान : मेढ़की को भी जुकाम होते लगा।

(**कंछी का प्रवेश**)

गोपीनाथ : यह लो, कंछी वापस आ गया।......क्यों भई कंछी, कहां गई वह ?

कंछी : कौन बाबूजी ?

गोपीनाथ : अरे वही, जो मैनेजर साहब को पूछ रही थी।

कंछी : यह तो मालूम नहीं, किधर जा रही हैं वह बीबीजी। पर मैं काफी के पैकिट उनकी मोटर में रख आया हूँ।

[**दूसरी मेज पर से ट्रे उठाता है और दीवार पर टंगा झाड़न**]

सूरजभान : मोटर !

मगनचन्द : मोटर ! उनकी मोटर!!...कंछी, मोटर चली गई क्या ?

कंछी : मेरे सामने तो गई नहीं थी। ड्राइवर तो दीखा नहीं। शायद खुद चलाती हैं ।

सूरजभान : खुद चलाती हैं ?...मगन, वह मोटर खुद चलाती हैं !

मगनचन्द : और मोटर अभी गई नहीं है सूरज !...अभी—

सूरजभान : मौका है । बिल्कुल वैसा ही जैसा मेवानन्द ने मालिनी के लिए......

मगनचन्द : जैसा मंजन ने माला के लिए......

गोपीनाथ : किस फिल्म में ?

(लेकिन सूरज और मगन उसकी उपेक्षा ही करते हैं ।)

सूरजभान : मगन, अभी चलो !

मगनचन्द : फौरन चलो, सूरज, फौरन !

[**दोनों तेजी से बाहर की तरफ भागते हैं। गोपी पीछे-पीछे पुकारता जाता है ।**]

गोपीनाथ : अरे भई, मुझे तो बताओ, किस फिल्म में ? सूरज ! ओ मगन, मगन.....

(प्रस्थान)

कंछी : **(प्लेट और प्याले ट्रे में रखता हुआ)** खब्ती हैं तो क्या, इन्हीं बाबुओं की बदौलत तो होटल चलता है ।...सबेरे चाय-चिप्स, दोपहर को चाय-चिप्स, शाम को सनीमा के पहले चाय-चिप्स, सनीमा के बाद चाय-चिप्स । सनीमा न देखें तो चाय-चिप्स हजम कैसे हों ?...हमारे भी पैसेवाले मां-बाप होते तो मजा करते ।...होटल में चाय-चिप्स उड़ाते और देखते रोज सनीमा ।...यहां तो 'नाइट शो' में पांच आने का टिकट तकदीर में लिखा है ।...घर पहुँचो तो कम्बख्त घरवाली की समझ में सनीमा ही नहीं आता ।...काटने

को दौड़ती है, काटने को ।...क्या हीरोइन मिली है हमें भी !...

(भोंड़े स्वर में गुनगुनाने लगता है)

मौसम बहार है ।
बीवी बेकार है,
आ जा प्यारी मौत अब तेरा इंतजार है ।'

[विमल का प्रवेश । पेंट, कमीज । उम्र लगभग ३०-३२ वर्ष । हाथ में कागज के पैकिट । चश्मा पहने है । गठा हुआ बदन । रंग-ढंग और व्यक्तितत्व आत्म-विश्वासपूर्ण । बातचीत में अनायास सहजपना । लेकिन इस समय कुछ भटका-सा जान पड़ता है ।]

विमल : ए मिस्टर !—

कंछी : (**चौंककर**) जी !

विमल : मैंने कहा, बेरा, इस रेस्तरां में ताज़ा काफी के पैकिट मिलते हैं ?

[कंछी सम्हलकर अपनी व्यवसाय-बुद्धि पर आ गया है ।]

कंछी : जी...जी...हां हुज़ूर ।......मैनेजर साहब आपके सामने ही मशीन में काफी पीसकर पैकिट में भर देंगे । ...इधर चलिए मैनेजर साहब के कमरे में...(**चलते-चलते**) अभी तो एक बीबीजी चार पैकिट लेकर गई हैं ।

विमल : (**रुककर**) गई ?

कंछी : जी गई !...क्या हुआ हुज़ूर ?. ..(**विमल को वापस होता देख**) ओहो, तो आप भी उन बीबीजी के ही पीछे......

विमल : क्या मतलब तुम्हारा ?

कंछी : अजी साहब, अभी-अभी तीन बाबू लोग तो उन्हीं के पीछे-पीछे भागे गये हैं।

विमल : तीन बाबू लोग......क्यों ?

कंछी : आप लोग सब जवान आदमी हैं, हमसे क्या पूछते हैं ?

विमल : अच्छा, यह बात है। किस तरफ गये हैं वे लोग ? दरवाजे पर तो मिले नहीं।

कंछी : मैं तो मोटर पूरब की तरफ चंचल स्टोर्स के सामने छोड़ आया था। आप पच्छिम से आये होंगे।

विमल : चंचल स्टोर्स ? साड़ियों की दूकान ?.....अच्छा..... अच्छा तो भई, चाय लाओ।

(एक मेज के पास बैठ जाता है।)

कंछी : काफ़ी के पैकिट नहीं लीजिएगा ?

विमल : अभी नहीं।......कौन हैं वे बाबू लोग ?

(नेपथ्य में बातचीत का स्वर सुन पड़ता है।)

कंछी : लीजिए, जान पड़ता है, वे लोग वापस ही आ गये।

(दरवाजे की ओर झांकता है।)

विमल : आ गये। साथ में........

कंछी : **(विमल की तरफ देखकर मुस्कराता हुआ)** बीबीजी नहीं हैं।

विमल : नहीं हैं ? **(खड़ा होता है। फिर कुछ सोचकर बैठता हुआ)** खैर, तुम चाय लाओ और देखो......एक प्लेट चिप्स भी।

कंछी : जी।

[गोपी, सूरज और मगन का जोर-जोर से बातें करते हुए प्रवेश]

गोपीनाथ : कंछी ! लाओ और तीन प्याला चाय और चिप्स । गये तो थे हास्पिटल का खाना खाने, मगर तकदीर में तो लिखी थी यहाँ की चाय और चिप्स ।

[**कंछी अन्दर जाता है । विमल सिगरेट पीता हुआ ध्यान से सुनता है ।**]

सूरजभान : मगन, अगर तुमने ज़रा सूझ-बूझ से काम लिया होता तो हममें से एक तो उसकी मोटर से धक्का खाकर गिर ही पड़ता । फिर तो उसी की मोटर में हास्पिटल ले जाये जाते । उसी के कोमल हाथों से सेवा-शुश्रूषा होती और जैसा 'हड़कल' फिल्म में हुआ है, मौत की बीमारी मुहब्बत की बीमारी में तबदील हो जाती ।

मगनचन्द : मुझे क्या मालूम था कि वह मोटर को आगे न ले जाकर बैक करके ले जायेगी । आगे ले जाती तो हम-लोग मुस्तैद थे ही, जरूर टक्कर लगती, मगर वह जालिम तो झट से मोटर बैक करके उड़ा ले गई और हम देखते ही रह गये ।...माला की मोटर तो हमेशा आगे ही जाती है, चाहे रास्ते में आदमी हों चाहे गधे ।

सूरजभान : लेकिन मालिनी तो मोटर बैक करने में इनाम पा चुकी है ।

मगनचन्द : फिर वही बात, सूरजभान !......कहाँ राजा भोज.......

गोपीनाथ : (**बीच-बचाव करता हुआ**) तुम दोनों ही ने गलती की सूरजभान । मगनचन्द, मुझसे बिना पूछे जब किसी काम में तुम दोनों ने हाथ लगाया, वही बेकार गया ।

सूरजभान : तुम बड़े अफ़लातून हो न !

गोपीनाथ : **(इस बात पर कान न देता हुआ)** मगन, 'दिल की सवारी' फिल्म की याद है ?

मगनचन्द : हाँ। वही न......

गोपीनाथ : हाँ, वही जिसमें हीरोइन अकेले मोटर ले जा रही है। बस वही तरकीब थी। मैं जाता और एक साथ उसपर हमला करके एक रुमाल से उसका मुंह बाँध देता और दूसरे से उसके हाथ। स्टीयरिंग व्हील छीन लेता। मोटर तेज हो जाती। उसी वक्त तुम लोग आ पहुँचते।

सूरजभान : कहाँ से ?

गोपीनाथ : कहीं से भी। बस, चलती गाड़ी में छलांग मारकर उसे बचाने की नीयत से तुम पीछेवाली सीट पर बैठ जाते। और मुझे छुरा दिखाते। मैं डरकर स्टीयरिंग व्हील तुम्हारे हवाले कर देता। उस लड़की को तुम मुक्त करते और वह कृतज्ञता-भरी आँखों से तुम्हें देखती।

[मगनचन्द और सूरजभान विस्फारित नयनों से एकाग्रचित्त होकर सुन रहे हैं, मानो समूचा व्यापार उनकी आँखों के सामने हो रहा हो।]

गोपीनाथ : उसके बाद जानते हो क्या होता ?

मगनचन्द : बताओ न !

गोपीनाथ : उसके बाद एक सुहावने जंगल के बीच पहुँचकर मोटर का पेट्रोल खत्म हो जाता। तुम लोग उतरते। चारों ओर फूलों से लदे वृक्ष, भीनी-भीनी हवा, चिड़ियाँ चहक रही होतीं.....और उसी समय वह लड़की गाना शुरू कर देती।......अरे, वही गाना, 'ओ ओ'—

[गाना शुरू करता ही है कि कोनेवाली मेज पर से विमल बोल, उठता है।]

विमल : (**अपने ही स्थान से**) लेकिन जनाब, इस सिलसिले में दो बातें आप भूल गये। एक तो यह कि आप में से कोई मोटर चलाना भी जानता है या नहीं ?

[इस विघ्न से तीनों चौंक जाते हैं और विमल को देखने लगते हैं। उधर विमल आत्मविश्वास के साथ सिगरेट पीता हुआ, धुएँ के नाना आकार उड़ा रहा है।]

सूरजभान : मोटर चलाना ?...... मैं तो नहीं जानता।

मगनचन्द : मैं भी तो नहीं।

गोपीनाथ : (**सहसा विघ्नकर्त्ता की उद्दंडता का ध्यान करते ही**) हम लोग मोटर चलाना न जानते सही, लेकिन (**जरा तेजी से**) लेकिन साहब, आप कौन होते हैं दखल देने वाले ?

विमल : (**अपनी कुर्सी से उठकर उन लोगों की मेज के निकट आता हुआ और गोपी की बात को अनसुनी करता हुआ**) और दूसरी बात यह है कि उस लड़की के दांत बड़े तेज़ हैं, बड़े पैने। (**उन लोगों की मेज़ के पास खड़ा होकर**) जो सज्जन उसके मुंह पर कपड़ा बाँधते, उनकी उँगलियों की खैर नहीं ?

गोपीनाथ : (**कुछ चिन्तित स्वर में**) उँगलियों को काट लेती ?

विमल : (**कृत्रिम गांभीर्य**) जी हाँ, हड्डी-समेत।

[गोपी कुछ सिहर उठता है। चाय और चिप्स लिये हुए कंछी का प्रवेश। सूरजभान वगैरह की चाय और तश्तरियां उस मेज़ पर रखता और फिर विमल से पूछता है।]

कंछी : हुजूर की चाय भी ?

सूरजभान : **(सोचता-सोचता नयी सूझ के आवेश में)** लेकिन, लेकिन साहब....आपको कैसे मालूम कि उसके दाँत इतने तेज हैं, मिस्टर.....

विमल : विमल । मेरा नाम है विमल ।

मगनचन्द : **(सूरजभान की सूझ से शह पाकर)** हाँ, आपको कैसे मालूम मि० विमल !

विमल : मुझको कैसे मालूम ?...... **(कंछी से)** अच्छा भई, मेरी चाय और चिप्स भी इसी मेज़ पर रख दे ।...... **(उन लोगों से)** क्यों साहब, बैठ सकता हूँ ?

तीनों : जी-जी,......बैठिए......बैठिए !

[**कंछी प्याले और प्लेट रखकर अन्दर चला जाता है । विमल कुर्सी खींचकर उसी मेज के पास बैठ जाता है ।**]

विमल : **(बड़े तपाक से, चम्मच से चाय मिलाता हुआ)** बात यह है साहब कि आप लोगों की तरह मैं भी उसके प्रेम में डूब चुका हूँ, और......और मुझे उसके दांतों के कारनामों का तजुर्बा है ।

गोपीनाथ : अच्छा; उसने आपको भी दाँतों से काटा ?

सूरजभान : कहाँ काटा ?

मगनचन्द : चेहरे पर तो काटने का निशान नहीं दीख पड़ता ।

विमल : इतनी तकदीर कहाँ मि० मगनचन्द! लेकिन उसके दाँतों की तेजी मैंने देखी जबकि दो मोटे अखरोट मेरे देखते-ही-देखते उसके दाँतों के बीच ऐसे चकनाचूर हो गये जैसे चक्की के पाटों के बीच में घुन ।

सूरजभान : **(निराश स्वर)** अखरोट !

विमल : जी हाँ, छिलके-समेत ।

मगनचन्द : **(उसी निराश स्वर में)** अखरोट !......हम तो समझे थे——

विमल : **(लम्बी सांस खींचता हुआ)** काश, वह नौबत आ पाती, मगन बाबू ! बात यह है कि मेरे प्रेम के बादल पहाड़ की चोटियों पर सतरंगी छटा दिखाने ही लगे थे कि उनको पकड़ने के लालच में मैंने एक ऐसी नादानी कर डाली कि....बस......

सूरजभान : क्या हुआ ?

विमल : क्या बताऊँ ! बादल तो गायब हो गये, और रह गया एक नाला, बराबर बहता हुआ पानी, कभी उछलता-कूदता, लेकिन अक्सर धीमी रफ्तार से बहता हुआ।

मगनचन्द : निराश प्रेमी के आँसुओं की धारा !

विमल : अब आप जो समझ लें।...

[आंसुओं को रोकने का नाटच। जेबों में रुमाल टटोलता है, लेकिन मिलता ही नहीं।]

सूरजभान : मेरा रुमाल लीजिए।

(रुमाल पकड़ाता है)

विमल : **(भरे गले से रुमाल से आंखें पोंछता हुआ)** थैंक यू !...अब कितने रुमाल रखूं। दर्जनों रोज गीले हो जाते हैं।

गोपीनाथ : **(एक प्रसिद्ध फिल्मी तर्ज को करुण स्वर में गुनगुनाता हुआ)** 'जब याद किसी की आती है'......

मगनचन्द : ट्रेजडी ! दिल दहलानेवाली ट्रेजडी !

सूरजभान : कौन-सी वह नादानी थी जिसने आपको यह दिन दिखाया ?

विमल : वह नादानी...जी, मौका आने पर उसका हाल भी

आपको बतलाऊँगा ताकि आप लोगों पर वह न गुजरे जो मुझ पर गुजर चुकी है।...लेकिन मुझे विश्वास है कि आपको मेरी सीख की जरूरत नहीं पड़ेगी।

सूरजभान : क्यों !

विमल : क्योंकि मेरी तरह आप लोगों की शिक्षा अधूरी नहीं रही।

गोपीनाथ : आप तो पहेलियों में बात करते हैं मि० विमल !

विमल : बात यह है गोपी बाबू कि जब मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ता था तब महीने में एक ही बार सिनेमा देख पाता था।

तीनों : (**एक साथ अचंभित स्वर में**) महीने में एक ही बार !!

मगनचन्द : आप यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे या गुरुकुल में ?

सूरजभान : यह किसी गांव का ज़िक्र तो नहीं है ?

गोपीनाथ : महीने में सिर्फ एक बार ? साहब, यकीन नहीं होता !

विमल : तो शायद आप यह भी यकीन नहीं करेंगे कि उन फिल्मों में सिर्फ तीन या चार गाने होते थे !

(**तीनों आश्चर्य से अवाक् रह जाते हैं।**)

सूरजभान : तीन गाने। नामुमकिन।

मगनचन्द : सारे तीन घंटे के फिल्म में गाने महज तीन या चार ?... जनाब, बीस गाने से कम की फिल्म तो दिखाई ही नहीं जा सकती।

गोपीनाथ : सुना है, सेन्सर बोर्ड अब पच्चीस गाने से कम की फिल्म पास ही नहीं करेगा।

विमल : रोना तो यही है कि उस ज़माने में ऐसा कोई सेन्सर बोर्ड ही नहीं था।...यही नहीं। उन फिल्मों के हीरो-

हीरोइन भी होते थे, बिल्कुल रोजमर्रा की जिन्दगी में पाये जानेवाले लोग ।

सूरजभान : क्या मतलब ? क्या ज़मींदार के लड़के और ग्वाले की लड़की की प्रेम-कहानी नहीं होती थी ?

विमल : जी नहीं ।

मगनचन्द : और सेठ की लड़की और तांगेवाले की मुहब्बत ।

विमल : वह भी नहीं ।

गोपीनाथ : और मिल-मालिक की इकलौती लड़की और बेकार ग्रेजुएट का प्यार ?

विमल : बिल्कुल नहीं साहब, बिल्कुल नहीं । मैंने कहा न, रोज़ाना की जिन्दगी की तसवीरें थीं, बस ।

सूरजभान : तब तो उन फिल्मों में चांदनी रात में हीरोइन तैरने की पोशाक भी नहीं पहनती होगी ?

विमल : तैरने की पोशाक ? आपका मतलब साड़ी वगैरह गायब ? वह तो कभी नहीं ।

मगनचन्द : और हीरोइन के जन्म-दिन पर उसका अमरीकी नाच भी नहीं होता होगा ?

विमल : कहाँ साहब, ये सब नज़ारे कहाँ नसीब होते थे हम लोगों को !...बड़ी दकियानूसी फिल्मों का जमाना था वह ।

(तीनों अचरज में एक दूसरे का मुंह देखते हैं ।)

गोपीनाथ : तब आप किस मुंह से मुहब्बत करने चले थे विमल साहब ?

मगनचन्द : मि० विमल, भला प्रेम के मैदान में आप कैसे सफल हो सकते थे ? आप तो बिल्कुल आउट आव डेट हैं ।

गोपीनाथ : आपने तो असली जिन्दगी देखी ही नहीं ।

विमल : असली ज़िन्दगी । **(सोचता हुआ)** कहते तो आप ठीक हैं ।

गोपीनाथ : आपको इस मैदान से रिटायर हो जाना चाहिए ।

विमल : (**पराजित मुद्रा**) वह मैदान तो मेरे लिए पहले से ही बन्द हो गया । मन्सूबे मिट्टी हो गये ।...बस एक तमन्ना बाकी है ।.......

सूरजभान : वह क्या ?

बिमल : वह यह कि आप-जैसे मँजे हुए खिलाड़ियों के कुछ काम आ सकूं ।

गोपीनाथ : आप सच कहते हैं ?

विमल : हाथ कंगन को आरसी क्या !

मगनचन्द : तो देखिए, हम लोगों का सन्देशा उस लड़की तक पहुँचा दीजिए ।

विमल : संदेशा क्या, मैं तो आपकी उससे आज ही मुलाकात करा सकता हूँ ।

(तीनों खुशी से उछल पड़ते हैं ।)

सूरजभान : घर तो जानते ही होंगे ?

विमल : अच्छी तरह । लेकिन इस वक्त रात हो चली है, इसलिए पिछवाड़े से जाना ठीक होगा ।

मगनचन्द : 'आसमानी घटा' फिल्म में हीरो-हीरोइन के बँगले के पिछवाड़े जाकर मैंडोरिन बजाता है ।

सूरजभान : गोपी के पास है तो सही बैंजो ।...आज ही मरम्मत कराई है ।

गोपीनाथ : वह रखा है । (**कोने से बैंजो उठा लाता है**) साथ में ले चलूंगा । (**बैंजो पर आघात करते हुए**) और गाऊँगा दर्दभरी आवाज में वही गाना...

सूरजभान : 'बेवफा' फिल्म का हीरो हीरोइन के लिए एक प्रेजेंट

लेकर जाता है। मैं सोचता हूँ कि एक ज़ेवर या साड़ी ले चलूं।

विमल : साड़ी का ख्याल बुरा नहीं है। पास में दूकान भी है, चंचल स्टोर्स।

सूरजभान : ठीक। अभी साड़ी लेते चलेंगे।

मगनचन्द : और मैं ? मुझे भी तो कुछ करना चाहिए।

विमल : मेरी सलाह मानें तो बातचीत की ज़िम्मेवारी आप अपने ऊपर लीजिए।

मगनचन्द : आप ठीक कहते हैं।...मेरी बातों में शहद की मिठास होगी, कृष्ण की वंशी का जादू होगा और होगी प्रेम-वीणा की झंकार, जिसे सुनकर उसकी हृदय-कमलिनी ऐसे ही खिल पड़ेगी जैसे माला अँगड़ाइयाँ लेती है।

सूरजभान : फिर वही बात।....मालिनी की अँगड़ाइयों की तारीफ तो फिल्मेशिया का सम्पादक हमेशा करता है, और तुम लिये फिरते हो माला को !

विमल : **(बीच-बिचाव करते हुए)** देखिए मि० सूरजभान ! सुनिए मि० मगनचन्द ! आप लोग तो इन मामलों में माहिर ठहरे। मैं आप लोगों को क्या सीख दूं।...... लेकिन इस लड़की के स्वभाव को जानता हूँ इसलिए...

गोपीनाथ : हाँ, हाँ, कहिए-कहिए। हमें तो आपके तजुर्बे से लाभ उठाना है।

विमल : जी हाँ। मेरा मतलब यह है कि मालिनी या माला—किसी की भी तारीफ आपने उस लड़की के सामने की तो डर है कि सब किया-कराया चौपट हो जायगा।

सूरजभान : मैं समझ गया।....कोई भी हीरोइन दूसरी हीरोइनों की तारीफ नहीं सुन सकती।

मगनचन्द : मैं भी यही सोच रहा था ।

विमल : बिलकुल ठीक ।....देखिए, कितनी जल्दी आप समझ गये इस बात को । आजकल की फिल्मों से बुद्धि कितनी तेज हो जाती है, यह इस बात का सबूत है । चलिए । (**उठते हुए**) टैक्सी से ही चलना होगा ।

गोपीनाथ : हां, हर फिल्म के हीरो के पास टैक्सी या अपनी मोटर होती है ।

(**खड़ा हो जाता है** ।)

मगनचन्द : आज हम लोगों को सच्चे मानी में फिल्मी हीरो बनने का मौका मिल रहा है ।

(**खड़ा हो जाता है** ।)

सूरजभान : आज सारी फिल्मी दुनिया का रोमांस हमारी मुट्ठी में आया ही चाहता है ।

[**खड़ा हो जाता है--ज्योंही सब लोग प्रस्थान के लिए उद्यत होते हैं, त्योंही कंछी का प्रवेश**]

कंछी : बाबूजी, मैनेजर साहब पूछ रहे हैं कि और चाय-चिप्स चाहिएँ आप लोगों को। अब होटल बन्द करने का वक्त....

गोपीनाथ : चाय-चिप्स !...कंछी, आज हमलोग और चाय-चिप्स नहीं लेंगे । आज हमलोग मुहब्बत की मंजिल के राह-गीर हैं ।

कंछी : राहगीर ।...बाहर जा रहे हैं क्या ?

गोपीनाथ : एक नयी दुनिया में, एक अनूठे तजुर्बे की खोज में....

कंछी : (**सिर खुजलाता हुआ**) और पैसे बाबू जी ?

सूरजभान : क्या बेमौके बात करते हो कंछी ? जानते नहीं हमारा हिसाब....

कंछी : मैं समझा, शायद लौटकर आना कब हो....

विमल : मेरे कितने पैसे हुए कंछी ?

मगनचन्द : नहीं विमल साहब, आज आप हमारे मेहमान हैं। कंछी हमारे हिसाब में लिखो।

विमल : यह तो जरूरी नहीं जान पड़ता। (**बटुआ जेब में वापस रखता हुआ**) खैर....जब आप मानते ही नहीं तो......थैंक यू...।

सूरजभान : चलिए, पहले साड़ी खरीदनी है।

[**चारों का दाहिने दरवाजा से प्रस्थान। कंछी थोड़ी देर सिर खुजलाता रह जाता है और फिर चाय के बर्तन ट्रे में रखते हुए आप-ही-आप बड़बड़ाता है।**]

कंछी : अबतक तो तीन ही थे, अब एक और मिल गया।...क्या ज़माना है ? दूध के दाँत टूटे नहीं कि चले मुहब्बत करने।.....हमारी घरवाली-सी बबुआइन मिले तो छठी का दूध याद आ जाय, छठी का।...

(**पर्दा गिरता है**)

दूसरा दृश्य

[एक मकान का पिछवाड़ा। दो ऊँची खिड़कियां जो आदमी की ऊँचाई से ऊपर हैं। एक खिड़की बन्द है, एक खुली। मकान के आगे खुली जगह में कुछ झाड़ियां, कुछ छोटे गमले, और एक बड़ा गमला लोहे के पीपेवाला, ये सब वस्तुएँ छितराई पड़ी हैं। बड़े गमले का सहारा लेकर कभी-कभी पात्र बैठ जाते हैं, किन्तु वह दीवार से दूर हटकर रखा है। खुली खिड़की में से मन्द रोशनी आ रही है।

विमल के पीछे-पीछे गोपीनाथ, सूरजभान और मगनचन्द का दबे- पांवों प्रवेश। सूरजभान के हाथ में सारी का खूबसूरती से बँधा हुआ बंडल है। गोपीनाथ बैंजो लिए हुए है और मगनचन्द एक कागज, जिसे कभी-कभी वह गौर से देखता है। चारों आपस में बातचीत कुछ दबे स्वर में करते हैं; लेकिन बाद में स्वर अनजाने ही खुल जाता है।]

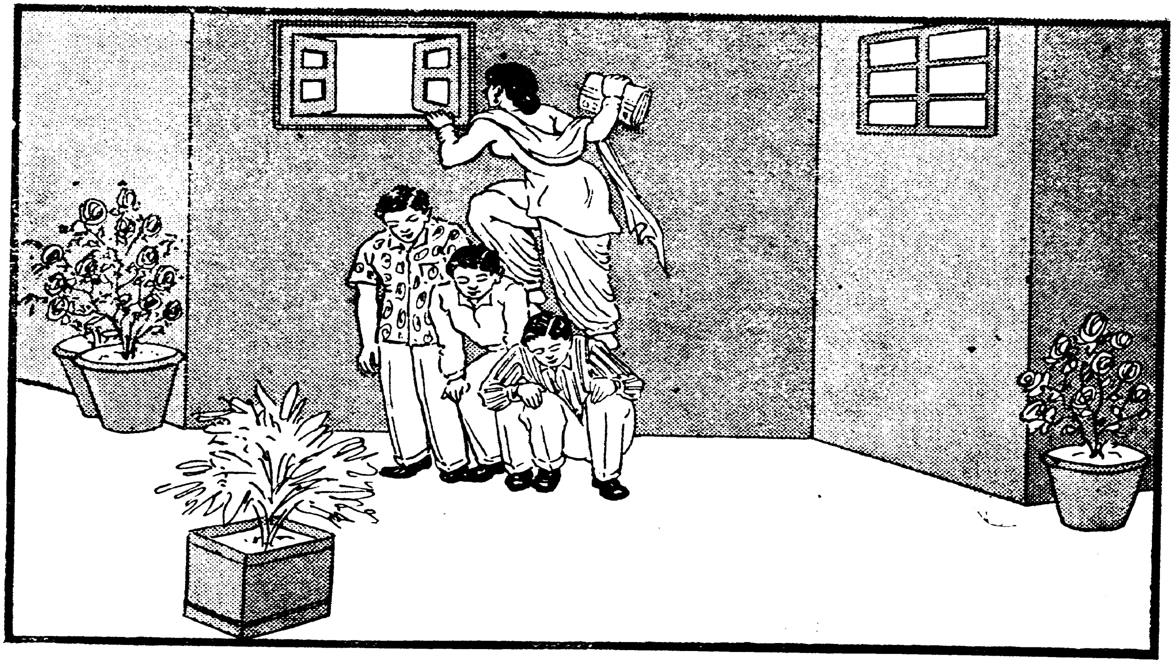

ओ मेरे सपने—दूसरा दृश्य

विमल : बस, इसी जगह ठीक रहेगा।

गोपीनाथ : अगर सोती हुई तो...

विमल : आपके मधुर संगीत को सुनकर जग उठेगी।

गोपीनाथ : (**बैंजो बजाने की चेष्टा करता हुआ**) 'उठ जाग मुसाफिर'......

विमल : ऐसे नहीं...और अभी नहीं।

गोपीनाथ : और कोई तरीका ही नहीं उसे खिड़की पर बुलाने का। ......खिड़की बहुत ऊँची है।

सूरजभान : पहले झांक तो लें कि अन्दर है या नहीं। (**दाहिनी ओर को जाता हुआ**) इस तरफ ही 'तो है दरवाज़ा।

विमल : उधर जाने की जरूरत नहीं। जरूर अन्दर ही होगी।

मगनचन्द : तुम भी कैसी बेमज़ा बात करते हो सूरजभान ! दरवाज़ा ! दरवाज़ा ! अरे, कैसा रोमांटिक मौका है खिड़की से उसकी झलक लेने का, उससे दो मीठे बोल बोलने का ! बिल्कुल रोमियो और जूलिएट ! मेरे पहले शब्द भी वही होंगे--'काश मैं तेरे हाथ का दस्ताना होता।'

विमल : दस्ताना वह पहनती ही नहीं। दस्ताने से उसे चिढ़ है।

मगनचन्द : ऐं !...(**हाथवाले कागज को घबराहट से देखता हुआ।**) तो...तो...मुझे अपने शब्द बदलने होंगे। ....यह तो एक नयी मुसीबत खड़ी हो गई....

सूरजभान : अब कैसे हो ?...एक मुश्किल और भी तो है। खिड़की देखो कितनी ऊँची है ? हाथ ही नहीं पहुँचता।...साड़ी का पैकिट कैसे पकड़ाऊँगा ?

(**चिन्तित मुद्रा।**)

गोपीनाथ : असल में यह ट्यून ठीक नहीं बैठ रहा। (**घबराहट में बैंजो पर आघात करता हुआ।**) कोई दूसरी...

विमल : (**उन तीनों की घबराहट को ताड़ता हुआ**) देखिए मि० गोपीनाथ। मि० सूरजभान, सुनिए। आप भी मि० मगनचन्द।...आप तीनों इस समय 'नर्वस' हो रहे हैं! यानी आपकी सिट्टी गुम होनेवाली है।.. रोकिए, वरना (**कंधे हिलाकर**) लुटिया ही डूब जायगी।

मगनचन्द : (**कुछ लड़खड़ाती आवाज**) एं...जी...

गोपीनाथ : लेकिन, लेकिन अब क्या हो ?

विमल : सुनिए...जैसे भक्त लोग अपने इष्टदेव का ध्यान करके शान्ति पाते हैं, वैसे ही आप लोग भी ध्यान कीजिए किसी-न-किसी फिल्मी-हीरो का। जरूर शान्ति और हिम्मत मिलेगी। कीजिए ध्यान !

सूरजभान : (**जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिला हो**) मेरे तो दिल पर मालिनी और दिमाग पर मेवानन्द खिंचे हैं। उन दोनों के मधुर मिलन का चित्र आंखों के सामने झलक रहा है। अहा ! क्या सुन्दर युगल मूर्ति है, क्या अनुपम दृश्य है।

(**आंखें बन्द करके झूमने लगता है।**)

मगनचन्द : और मैं ? मैं वही सपना देखता हूँ जो महीप कुमार ने चट्टान पर सिर रखकर रोते-रोते सो जाने पर देखा था।......वह देखता है, माला बादलों और तारों के बीच सफेद खच्चर पर बैठकर उड़ रही है। खच्चर आसमान से नीचे उतरता है और महीप कितने प्यार से उसकी झब्बेदार पूंछ को दुलराता है, सहलाता है,

(**हाथ से सहलाने का संकेत करता है**) अहा ! कैसा अपूर्व सपना है यह, कैसा मधुर !

[**तन्मय हो आंखें बन्द कर स्वप्न का रसास्वादन करता है। इस बातचीत के दौरान में विमल खिसककर दाहिनी तरफ बाहर चला जाता है। उसके प्रस्थान से ये लोग अपरिचित हैं।**]

गोपीनाथ : मुझे भी याद आ रहा है वह गाना, वह तराना, जो रेलगाड़ी छूट जाने पर मंजन गाता है, प्लैटफार्म पर चहलकदमी करते हुए। अरे, वही गाना, वह तो आपने भी सुना होगा मि० विमल, (**पीछे मुड़कर देखता है**) अरे, मि० विमल कहां गये ? मि० विमल ? (**सूरजभान और मगनचन्द को झकझोरते हुए**) सूरजभान !...अरे मगन, उठो, उठो ! वह विमल साहब तो हैं ही नहीं।

सूरजभान : हैं ही नहीं। (**कुछ उनींदा-सा**) अगर अब नहीं है तो पहले भी नहीं रहे होंगे।

गोपीनाथ : तो क्या हम लोग सपना देख रहे थे।

मगनचन्द : मैं तो देख ही रहा था।

गोपीनाथ : अरे वह खच्चरवाला सपना नहीं। मैं कहता हूँ कि क्या मि० विमल सपने की चिड़िया थे जो उड़ गये ?

सूरजभान : (**कुछ वैसी ही धुन में**) लेकिन यह कैसे हो सकता है ? यह साड़ी जो मेरे हाथ में है यह तो असलियत है और अगर यह असलियत है तो हमारा इस स्थान पर मौजूद होना ख्वाब नहीं हो सकता।

मगनचन्द : तुम ठीक कहते हो। यह कैसी अनहोनी बात है। इस समय तो हम लोग 'इन्सपायर्ड' हैं, हमारे दिलों में

मस्ती है।...और मेरे दिमाग में प्रेम-भाषण भी तैयार है, बिलकुल।

गोपीनाथ : और मेरा 'बैंजो' भी बजने के लिए उतावला है।

सूरजभान : और यह साड़ी? बिना परिचय के साड़ी कैसे दूंगा?

गोपीनाथ : ऐसे समय में मि० विमल का गायब होना खतरे से खाली नहीं है।

मगनचन्द : खिड़की पर कोई नहीं आया।

सूरजभान : कोई नहीं!...वहां भी कोई नहीं, यहां हमारे पास भी कोई नहीं!

[तीनों कुछ भयभीत होकर करीब-करीब आ जाते हैं और कुछ रुक-रुककर और आहिस्ता से बोलते हैं। यह वह भय है, जिसमें उन्हें कुछ रस भी मिलता है।]

गोपीनाथ : चारो तरफ सन्नाटा है!

मगनचन्द : रात ज्यादा हो गई है!

गोपीनाथ : अगर यह बैंजो तलवार बन जाय!

सूरजभान : और यह साड़ी का पैकिट ढाल!

मगनचन्द : तो हम लोग अपना जौहर दिखा दें।

सूरजभान : तीन घोड़े हों तो हम लोग भाग निकल सकते हैं।

गोपीनाथ : दो से भी काम चल सकता है। 'पाताल की सुन्दरी' फिल्म में......

मगनचन्द : **(लगाम पकड़ने की भंगिमा)** सरपट, सरपट हमलोग दौड़ते नजर आयें।

सूरजभान : और दुश्मन पीछा करता हो।

मगनचन्द, गोपीनाथ : **(आविष्ट स्वर)** दुश्मन!

सूरजभान : **(मानों पीछे ही हो)** दुश्मन!!

[तीनों एक दूसरे से सटे हुए दर्शकों की तरफ मुंह

किये खड़े हैं, और उन्हें नहीं मालूम है कि पीछे क्या हो रहा है। सहसा दाहिनी तरफ से किसी के गुनगुनाने की आवाज। 'जिया भरमाय' की तर्ज। तीनों यह सुनकर और भी सटकर खड़े हो जाते हैं। लेकिन पीछे मुड़कर नहीं देखते।]

गोपीनाथ : सुनो...सुनो !

मगनचन्द : हमारा पीछा हो रहा है।

सूरजभान : दुश्मन !

गोपीनाथ : नहीं-नहीं !...गाना !

[नेपथ्य में गाने का स्वर और किसी के चलने की आवाज आती है।]

सूरजभान : (**बिना मुड़कर देखे हुए**) कोई चल रहा है।

मगनचन्द : कोई इधर ही आ रहा है।

(पगध्वनि बिलकुल निकट)

गोपीनाथ : औरत की आवाज !

सूरजभान : ऐं, औरत !!

[सरिता का गुनगुनाते हुए प्रवेश। तीनों को अपनी तरफ पीठ किये खड़े देख, ठिठककर खड़ी हो जाती है और गुनगुनाना बन्द कर देती है।]

मगनचन्द : औरत !

सरिता : (**कुछ हँसते हुए**) जी हां, औरत। आप लोग कैसे मर्द हैं जो पीठ मोड़े खड़े हैं ? एक औरत का स्वागत नहीं करते ?

[तीनों आहिस्ता-आहिस्ता और साथ-साथ पीछे की ओर मुड़ते हैं और सरिता को देखते ही चौंक पड़ते हैं।]

तीनों : आप !!!

सरिता : जी हां, मैं ! मेरा नाम सरिता है ।

सूरजभान : आप...आप खिड़की से उतरी हैं ?

सरिता : (**मुस्कुराते हुए**) जी नहीं, दरवाजे से आई हूँ । खिड़की तो....

गोपीनाथ : (**निराश स्वर**) दरवाज़े से ।

मगनचन्द : लेकिन........लेकिन हम लोग तो खिड़की के लिए तैयार होकर आये थे ।

सरिता : तैयार ?...(**कुछ हँसकर**)...समझी । आपलोग शमा की झुलस से डरकर दूर भागने वाले परवाने हैं।

[**तीनों हँस देते हैं और फिर एक-एक करके जवाब देने की कोशिश करते हैं ।**]

गोपीनाथ : परवाने......आप......मैंने...... कहा...... सूरजभान......

सूरजभान : वही...वही...क्या......क्या था...मगन.....

मगनचन्द : शमा......मेरे कहने का मतलब....

सरिता : क्या मतलब आपके कहने का ?

मगनचन्द : मेरा मतलब कि शमा अगर बोलने लगे तो...

सरिता : तो ?

मगनचन्द : तो उससे दूर रहना ही ठीक ।

सरिता : ठीक......बिल्कुल ठीक । आप तो बाज़ी मार ले गये । मि०.....

मगनचन्द : मगनचन्द ।

सरिता : मि० मगनचन्द आप तो फिल्मी जवाब देने में कुशल हैं।

मगनचन्द : फिल्म तो मेरी रग-रग में......

गोपीनाथ : (**सरिता का ध्यान आकृष्ट करते हुए**) लेकिन आपने मेरा गाना......फिल्मी गाना.....तो सुना ही नहीं। मेरा नाम गोपीनाथ है। ही, ही, ही!

सूरजभान : और मेरा सूरजभान। मुझे भी तो (**पैकिट को आगे की तरफ बढ़ाता हुआ**) कुछ अपनी सेवा करने का मौका दीजिए। ही, ही, ही!

सरिता : अच्छा तो आप तीनों ही फिल्मी फौज के रंगरूट (**कुछ रुककर**) बहादुर हैं, और आप तीनों ही मुझसे......

तीनों : (**एक साथ खीसें निपोरते हुए**) ......जी.....
ही ही ही! जी......

सरिता : लेकिन देखिए मि० गोपीनाथ, मि० सूरजभान आप भी। और मि० मगनचन्द!......देखिए, आप लोग जानते ही हैं, हर फिल्म में एक हीरोइन होती है, एक हीरो और एक विलेन दुष्ट।...जैसे देवताओं की दुनिया में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ऐसे ही फिल्मी दुनिया में यह त्रिमूर्त्ति सत्य-सनातन से होती आई है। मगर यहां हमलोग चार हैं, चार।

मगनचन्द : लेकिन......लेकिन.....आप तो हममें से हरएक के लिए अलग-अलग हीरोइन हैं। मुझे तो आप माला की प्रतिमा दीख पड़ती हैं।

(**सरिता का मुंह फूल जाता है।**)

सूरजभान : और मेरे लिए तो आप ही मालिनी हैं। मालिनी!

(**सरिता भड़कने ही वाली है।**)

गोपीनाथ : और मेरे......

सरिता : बस, बस, बस। अगर आपलोगों ने माला-मालिनी

वगैरह से मेरा मुकाबला करके मेरा अपमान किया तो याद रखिए, आपलोगों की यह शमा परवानों से बोलती ही नहीं, उन्हें झुलसा भी देती है !

[**तीनों सकपका कर चुप हो जाते हैं और रुँआसे होकर एक दूसरे की सूरत देखने लगते हैं। थोड़ी देर सन्नाटा रहता है, फिर कुछ मुस्कराकर, कुछ हँसकर, शिशिर के उस मौन को पिघलाती हुई वसंत की वातास-सी सरिता बोलती है :**]

सरिता : आप लोग डर गये ? (**वही मोहक हँसी**) बड़े भोले हैं ।......(**चील की भयावह छाया के हट जाने पर जैसे खग़-शावक अपनी नन्हीं गर्दन उठाते हैं ऐसे ही तीनों धीरे-धीरे सरिता की ओर मुड़कर देखते हैं ।**) ......बड़े भोले, बड़े नादान हैं आपलोग ! कभी-कभी तो आप लोग मुझे बिल्कुल बच्चे लगते हैं, बच्चे !

गोपीनाथ : (**स्तब्ध**) बच्चे !

सूरजभान : (**उलहने के स्वर में**) ऐसा कहकर आप हमें ज़लील न करें सरिताजी ।

सरिता : ज़लील !

मगनचन्द : किसी भी हीरो को उसकी हीरोइन बच्चा कहे तो उसे जीते-जी मरा हुआ समझिए ।

सरिता : जीते-जी मरना ही तो प्रेम की पराकाष्ठा है ।

सूरजभान : हम आपके लिए मरने को भी तैयार हैं, हमारी इष्ट-देवी !

(**घुटने टेककर याचना की मुद्रा**)

मगनचन्द : और जीने को भी, हमारी हृदयसम्राज्ञी !

(घुटने टेककर प्रणय-मुद्रा)

गोपीनाथ : आज्ञा दें, प्रणय-देवी ! मैं अद्‌भुत प्रेम-संगीत की धारा बहा दूँ ।

[घुटने टेककर बैंजो पर कुछ आघात करता है और कुछ तीव्र स्वर उस क्षणिक मौन को और भी नीरव कर देते हैं । कुछ ही क्षण बाद सरिता खिलखिलाकर हँस पड़ती है, किन्तु वे तीनों विवश बन्दी की भांति घुटने टेके ही बैठे रहते हैं ।]

सरिता : (**हँसते हुए**) वाह, वाह ! क्या अपूर्व दृश्य है । मैं तो क्या, देवलोक की अप्सरा भी आये तो भी आपलोगों की झोली भर दे ।...लेकिन मैं अपने तीन टुकड़े तो नहीं कर सकती ।...इसलिए मेरे अनोखे प्रेमियो, जैसा मैं कहती हूँ वैसा करो ।...मैं यहां बैठ जाती हूँ । (**बीचवाले बड़े पीपे को साफ कर बैठ जाती है ।**) और तुमलोग एक-एक करके निकट आओ और अपने प्रेम का प्रदर्शन करो । बातों से, गीत से या भेंट देकर, जैसे भी चाहो ।...और फिर मैं तुममें से एक को पसन्द कर लूंगी, जो भी मुझे अच्छा लगेगा । क्यों, ठीक है न, मेरे परवानो ?...और...सुनो, मेरा 'तुम' कहकर पुकारना बुरा तो नहीं लगता ?

सूरजभान : बड़ा मीठा लगता है, तुम !

मगनचन्द : (**विभोर**) तुम !

गोपीनाथ : हम भी अपनी इष्टदेवी को 'तुम' कहना चाहेंगे ।

सरिता : शौक से...अच्छा तो मगनचन्द पहले तुम आगे बढ़ो । तुम्हारी प्रेम-पगी वाणी सुनने को मेरा मन मचल रहा है ।

[मगनचन्द आगे बढ़ता है और जल्दी-जल्दी जेब से कागज निकालकर पढ़ता है और फिर सरिता के निकट जाकर नीचे बैठ जाता है, घुटने टेककर ! बाकी दोनों अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं। सरिता विमुग्ध नायिका की मुद्रा से मगनचन्द को देखती है और ठोड़ी पर हाथ टेककर ध्यान से सुनती है। मगनचन्द लड़-खड़ाती-सी आवाज में प्रारम्भ करता है। ज्यों-ज्यों वह जोश में आता है त्यों-त्यों हाथ और चेहरे से नाटकीय संकेत करता जाता है।]

मगन चन्द : काश मैं तुम्हारे हाथ का...द...द...(**रुक जाता है**) काश मैं तुम्हारे मन का मोती होता तो तुम मुझे सँजोकर रखती। लेकिन तुमने तो मुझे आंख का आंसू भी न रखा, न ढलने दिया, न बरसने दिया !...क्या मालूम, तुम्हारी आंखों में मेरा बसेरा है भी या नहीं। लेकिन...मेरे दिल में बसेरा है तुम्हारी मोहिनी मूरत का....और...और एक धू-धू करती हुई चिता का, मेरे अरमानों की चिता !...आह।...तुम मां-बाप की ज़िद के कारण किसी और के गठबन्धन के जाल में फँस रही हो...लो, मैं भी कूदता हूँ...कूदता हूँ इस अथाह सागर में, आ जाओ सागर की लालची लहरो, लपेट लो मुझे, बुझा दो मेरी धधकती हुई चिता को और हमेशा के लिए, शान्त कर दो मेरे जीवन-प्रदीप को। आह ! ऊह ! ऐह !! ओह !!...

सरिता : ठहरो मगनचन्द ! ठहरो ! भई, यह तो ट्रेजडी है, और ट्रेजडी से मेरी तबीयत बहुत घबराती है, प्रेम

उभड़ना तो दूर रहा !...वैसी बातें कहो न...
जैसी...'चुलबुली' फिल्म में छलिया ने कही हैं ।

मगनचन्द : (**सिटपिटाता हुआ**) जी...जी...मैंने कहा....

सरिता : क्यों, क्या छलिया से तुम कुछ कम हो ?

मगनचन्द : कम...ही...ही...ही । कम ? बिल्कुल नहीं ।

सरिता : तो फिर...करो न कोशिश ।

मगनचन्द : (**जोश में आकर**) मुझे कोशिश करने की जरूरत ही नहीं, मेरी बिजली !...कोयल बोल रही है ।...बादल है, बरसा नहीं; आम है, बौर नहीं ।...तुम हो, पीतम नहीं ।...यह इधर तो देखो, इधर, कौन खड़ा है ? मैं...मैं हूँ तुम्हारी वहार, तुम्हारा घनश्याम !...इधर आओ ।...आओ न !...क्या कहा, मैं बड़ा वैसा हूँ !... पर तुम भी तो बड़ी वैसी हो, मेरी सजनी !...यह देखो, क्या है ? पान ? ऊँहूँ ।...यह है 'हार्ट', दिल । यही तो तुम मेरा छीन बैठी हो । और यह क्या है ? तीर ? ...ऊँहूँ ।...यह है प्रेम का कीड़ा । यही तो मेरे दिल को खा रहा है ।

सरिता : (**अस्वीकृति-सूचक सिर हिलाती हुई**) नहीं, नहीं, मि० मगनचन्द ! तुमसे काम नहीं चलेगा । भले आदमी हो । प्यार के शौकीन भी । मगर अभी कच्चे हो ।...मालूम होता है, तुम सिर्फ मैटिनी शो देखते हो, तभी तुम्हारे रंग कुछ फीके हैं ।

मगनचन्द : (**रुआंसा होकर**) मगर मैं तो कई 'नाइट शो' देख चुका हूँ ।

सरिता : तो मैटिनी से लेकर लगातार एक बैठक में आधी रात तक तीन शो देखने की आदत डालो । तब कुछ पक्के

बनोगे, मेरे नन्हें दोस्त !...अच्छा, अब ज़रा मि० गोपीनाथ को आने दो। (**मगन शिथिल अंग और निस्तेज चेहरा लेकर उठ खड़ा होता है**) इतने मायूस न बनो मगन।...तुम भी मेरे कुछ-न-कुछ तो काम आओगे ही।

(**मगन एक तरफ खड़ा हो जाता है।**)

गोपीनाथ : (**बैंजो पर झंकार करता हुआ आगे बढ़कर**) मायूसी का इलाज गाना है। बल्कि यों कहना चाहिए कि गाना ही रोना है और रोना ही गाना है। ऐसा आजकल की हर हिन्दुस्तानी फिलम हमें सिखाती है।

सरिता : (**लुभावनी भंगिमा के साथ**) अच्छा तो तुम मुझे गाकर रिझाओगे गोपीनाथ ?

गोपीनाथ : (**घुटने टेककर बैठता हुआ**) ऐसे ही जैसे 'ग़ाफ़िल' फिल्म में करोड़कुमार चलनी गुलकंद को रिझाता है !

सरिता : सुनें !

गोपीनाथ : (**गाता है**) हम तुमसे दुलत्ती खाके सनम,
न इधर के रहे, न उधर के रहे।
पर दिल है हमारा इस्पाती,
ये झटके हजारों सह लेगा।*

सरिता : बस बन्द करो, बन्द करो।

[**गोपी सकपका कर रुक जाता है। सरिता उसके हाथ से बैंजो बड़े अन्दाज से ले लेती है और फिर नर्म-मधुर वाणी में बोलती है।**]

— : गोपीनाथ, तुम्हारा बाजा तो अच्छा है, सितार, तानपुरे की तरह दकियानूसी नहीं। गाना भी तुमने नफीस

---

*प्रसिद्ध फिल्मी गीत 'हम तुमसे मुहब्बत करके सनम' की तर्ज पर।

छांटा, लेकिन, बुरा न मानना, तुम्हारी शक्ल में करोड़-कुमार की चमक नहीं, (**गोपीनाथ अपने चेहरे पर हाथ फेरता है**) शीशा होता तो दिखाती ।...और फिर (**प्यार से गोपीनाथ की नाक पकड़कर हिलाती हुई**) तुम्हारी आवाज भी...मर्दानी कम है।...(**गोपीनाथ निराश होकर उठ खड़ा होता है**) मायूस न हो गोपीनाथ, तुम भी मेरे कुछ-न-कुछ तो काम आओगे ही ।

सूरजभान : सरिता देवी, अब तो तुम्हें मुझे ही हीरो बनाना होगा।

सरिता : क्यों ? (**मोहक मुस्कराहट**) क्या इसलिए कि अब तुम ही रह गये हो सूरजभान ?

सूरजभान : इसलिए कि 'स्टंट' फिल्मों के हीरो की तरह मैं बोल कर नहीं, गाकर नहीं, बल्कि कुछ करके तुम्हारा मन रिझाऊँगा ।

सरिता : रिझाओ !

सूरजभान : (**छलांग मारकर सरिता के निकट पहुँचता है, झटके से साड़ी के पैकिट को खोलता है और घुटने टेककर सरिता के सामने रखता है**) यह लो ।

[**सरिता हर्षातिरेक से चीखकर साड़ी को उठाती है और तह खोलकर लटकाकर साड़ी को देखती है।**]

सरिता : साड़ी ! उफ़, कितनी खूबसूरत है। कितनी शोख है ! ...लवली !...बिल्कुल मेरी पसन्द का डिजाइन, बिल्कुल ।...और रंग भी वही ।...कैसे तुम जान गये सूरज बाबू कि मेरी यही पसन्द है ।

सूरजभान : (**गर्वोल्लास से खड़ा होकर**) मेरे दिल से पूछो, सरिता देवी, मेरे दिल की धड़कन से मेरी हीरोइन !

सरिता : (**उच्छ्वसित**) तुम...तुम...तो...सच...

सूरजभान : तुम्हारा हीरो हूँ।

[मकान के भीतर से किसी के खांसने की आवाज। सरिता कुछ चौंक उठती है।]

सरिता : हीरो ! (**फिर खांसने की आवाज**) अच्छा,... पहनकर दिखाऊँ ?

सूरजभान : इससे बढ़कर मेरा क्या इनाम होगा, मेरी हीरोइन !

सरिता : मगर मकान के अन्दर कैसे जाऊँ ?

सूरजभान : हमारे सिर-आँखों पर से...

सरिता : ठीक कहा तुमने। अगर तुम 'स्टंट' फिल्म के हीरो हो तो मैं भी स्टंट फिल्म की हीरोइन से कम क्या बनूं। ...दरवाजे से जाने में क्या मज़ा। तुम लोगों की पीठ और कंधों पर से खिड़की में कूद जाऊँगी।

मगनचन्द : पीठ !

गोपीनाथ : कन्धे !

सरिता : तुम दोनों को भी तो मेरे कुछ काम आना है।

सूरजभान : हमलोग तुम्हारे लिए ठीक वैसी ही सीढ़ी बना देंगे जैसी 'बूमभड़ाका' फिल्म में तीनों बहादुर बनाते हैं। ...मगनचन्द, तुम जरा झुककर बैठ जाओ। (**दीवार के सहारे घुटने टेककर और पीठ झुकाकर मगनचन्द बैठता है।**) और उसके बाद...

गोपीनाथ : (**जिसे अब फिर लुत्फ आने लगा है**) मैं ? मैं कुछ ऊँचा होकर खड़ा हो जाता हूँ।

[मगन के बराबर थोड़ा झुककर खड़ा होता है जिससे सीढ़ी का दूसरा सोपान बन जाता है।]

सूरजभान : और उसके बाद मैं सीधा ही खड़ा हो जाता हूँ।

[गोपीनाथ के बराबर और खिड़की के ठीक नीचे

खड़ा हो जाता है। तीनों के चेहरे दर्शकों की ओर हैं। ज़ाहिर है कि तीनों को इस स्थिति में कोई शिकायत नहीं है, बल्कि कुछ रस ही मिल रहा है।]

सूरजभान : तो हो गई सीढ़ी तैयार !

मगनचन्द : सरिताजी, आओ, और सबसे पहले मेरी पीठ पर ही अपने चरण-कमल रखो !

सरिता : शाबाश, मगन बाबू, यही स्पिरिट होनी चाहिए। तुमने अपनी मायूसी को तिलांजलि दे दी। (**मगन की पीठ पर दीवार से सहारा लेती है। बगल में साड़ी)** देखो, जरा मजबूती से बैठे रहना।

मगनचन्द : तुम कतई चि-चि (**सरिता दूसरा कदम रखकर जमकर खड़ी होती है, जिससे मगनचन्द की आवाज कुछ दब जाती है।**)...न्ता...न करो।...

सरिता : अब तुम्हारा नम्बर है गोपी बाबू !

(एक कदम गोपी की पीठ पर रखती है।)

गोपीनाथ : हम लोगों को इस समय अपूर्व आ (**सरिता दोनों पैर रखकर जमकर खड़ी होती है और वही हाल गोपी का भी होता है।**) ऊँ...आ...नन्द मिल रहा है।

सरिता : लो, सूरज बाबू अब आखिरी मंजिल है।

(सूरजभान के कंधे पर पैर रखती है।)

सूरजभान : ऐसे रोमांटिक क्षण कितने नौजवानों को नसीब होते हैं ! तुम्हारे चरण क्या हैं, फू...(**वही हाल**) ऊँ... फू...ल हैं, फूल !......

सरिता : लो, आ गई खिड़की।

(खिड़की में कूद जाती है। कूदने की आवाज आती है।)

सूरजभान : पहुँच गईं ?

सरिता : (**कमरे में से ही**) हां, पहुँच गई।

मगनचन्द : अहा ! इस एडवेंचर ने तो मेरे सारे गम को दूर कर दिया।

गोपीनाथ : कितना सुन्दर रोमांस ! कितना अनूठा ! एक नाजुक-सी कली हमारे शरीर को छूती हुई निकल गई। अहा !

सूरजभान : तुमने साड़ी बदली सरिता देवी ?

सरिता : (**भीतर से ही**) बदल रही हूँ।

सूरजभान : (**दोनों की तरफ उल्लास के साथ देखकर और हाथ मलता हुआ**) इस साड़ी में हमारी हीरोइन कैसी मनमोहक लगेगी !

मगनचन्द : (**आहिस्ते से**) जैसे माला की मुस्कान !

सूरजभान : (**आहिस्ते से**) या मालिनी की चितवन।...हा-हा-हा! मिलाओ हाथ।

गोपीनाथ : यानी आज से माला और मालिनी की झड़प बन्द।

सूरजभान : बिल्कुल।...क्यों न मगनचन्द !

मगनचन्द : तुम्हारी जीत को मैं अपनी हार नहीं समझता।.

सूरजभान : आज से माला और मालिनी का संगम हो गया।

गोपीनाथ : आज हम रोमांस की उस सतह पर हैं, जहां मेरा तेरा का भेद ही मिट गया है।

सूरजभान : अहा, यह साड़ी और वह मुखड़ा। (**पुकारते हुए**) सरिता देवी, तैयार हो गईं।

सरिता : (**भीतर से ही**) हां, हो तो गई, लेकिन...

सूरजभान : लेकिन...खिड़की पर तो आओ।

सरिता : कोई मुझे आने नहीं देता।

सूरजभान : आने नहीं देता !

सरिता : जबरदस्ती रोक रहा है।

सूरजभान : (**तैश में आता हुआ**) ऐं ! यह किसकी मजाल ?... (**मगन और गोपी से**) दोस्तो, हमारी हीरोइन खतरे में है !

गोपीनाथ : खतरे में ?

मगनचन्द : मकान को घेर लो । हम अन्दर घुस पड़ेंगे !

सरिता : (**वहीं से**) दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया है ।

सूरजभान : ऐं ! दरवाजा भी अन्दर से बन्द ?...कुछ परवाह नहीं दोस्तो, हम खिड़की पर से ही हमला करेंगे । यही मौका है बहादुरी का !

मगनचन्द : (**दीवार के पास जाकर झुकता हुआ**) मैं तैयार हूँ, चढ़ो मेरी पीठ पर गोपी ।

गोपीनाथ : अत्याचारी के हाथ में हमारी हीरोइन !

सूरजभान : मैं उसका खून चूस लूंगा, खून...

[**तीनों ऊपर चढ़ने का उपक्रम करते हैं । इतने में खिड़की पर विमल की शक्ल दिखाई पड़ती है ।**]

विमल : ठहरिए दोस्तो, ठहरिए । इतना गुस्सा नहीं ।

सूरजभान : (**तीनों एक साथ**) कौन ?

मगनचन्द : विमल !!

गोपीनाथ : मि० विमल !!

विमल : जी हां, मैं ही हूँ, विमल ।

सूरजभान : आप ?

मगनचन्द : आप ? वहां ?

गोपीनाथ : आप ?

विमल : जी हां, मैं, मैं, मैं ।...इस बेदर्दी से मुझे न घूरिए, वैसे ही बहुत-कुछ भुगत रहा हूँ । जब से यह साड़ी मिली है, कह रही हैं—तुमने क्यों नहीं दिलवाई ऐसी साड़ी ।

तुम तो चंचल स्टोर से चकमा देकर भाग आये, जब में काफी लेने गई।......अब, भला अब आप ही बताइए, साहब......

सूरजभान : लेकिन यह आप किसकी बातें कर रहे हैं, मि० विमल ?

विमल : मैं बातें कर रहा हूँ अपनी बीवी की।...आप लोग नहीं मिले मेरी पत्नी से ?...इधर आओ सरिता, मेरे नये दोस्तों के तो दर्शन करो।

तीनों : (**आश्चर्यान्वित**) सरिता !!

सरिता : (**खिड़की के पास आकर। नयी साड़ी पहने है**) नमस्ते !

सूरजभान : स...रि...ता देवी। आपकी पत्नी !

मगनचन्द : अभी...अभी तो हमने इन्हें खिड़की के जरिए ऊपर भेजा है ?

गोपीनाथ : एक मिनट में शादी भी हो गई ?

सूरजभान : झूठ, सरासर झूठ !!

विमल : एक मिनट ?...अरे साहब, एक मिनट नहीं, चार बरस।...पूरे चार बरस होने को आये मेरी इनकी शादी को। क्यों सरिता ?

सरिता : इस अप्रैल में पूरे चार बरस हो जायँगे।

मगनचन्द : चार बरस !

गोपीनाथ : शादी ! सरिता देवी और शादी !!

सूरजभान : यह नहीं हो सकता। यह नहीं.......

विमल : अरे जनाब, यह सरिता देवी, यानी मेरी बीवी दो बच्चों की मां भी हैं।

सूरजभान : (**चीख उठता है**) दो बच्चों की !

सरिता : जी हां। अभी सो रहे हैं दोनों।

विमल : एक लड़का, एक लड़की :

सरिता : अगर आप चुपचाप दबे-पांव आने का वादा करें तो दिखा दूं दोनों को, बड़े भोले हैं, आपके ही जैसे ।

विमल : हां, हां, आइए । मैं दरवाजा खोलता हूँ । सरिता, चलो तुम बैठक की बत्ती जलाओ ।

[दोनों खिड़की से गायब हो जाते हैं, और थोड़ी देर में दूसरी जगह रोशनी भी होती है । तीनों हतबुद्धि-से खड़े हैं और थोड़े मौन के बाद बोलते हैं ।]

सूरजभान : (**भर्राए गले से**) मगन भाई ! गोपी भाई ! हम लुट गये ।

मगनचन्द : हमारे ...रोमांस का महल ढह गया !

सूरजभान : हमारा चमकता हुआ सोना मिट्टी हो गया !

मगनचन्द : यह क्या हो गया ? कैसे हो गया ?

सूरजभान : (**विक्षिप्त, दोनों हाथ उठाकर**) ओ मेरे सपने ! कहां है तू ? लौट आ मेरे सुनहले सपने, लौट आ !

गोपीनाथ : (जो अबतक गहन चिन्ता में लीन था । ठोड़ी हाथ से **पकड़े हुए, खोज की मुद्रा में**) लेकिन सूरजभान.!.. मगनचन्द ! सुनो...मुझे इसमें कुछ गलती मालूम होती है ।

सूरजभान : गलती ?

मगनचन्द : क्यों ?

गोपीनाथ : क्योंकि ...क्योंकि किसी भी फिल्म में ऐसा नहीं हुआ । हुआ ही नहीं । जरा याद करो ।

मगनचन्द : (**सोचता हुआ**) तुम कहते तो ठीक हो ।

गोपीनाथ : जब फिल्म में ही नहीं हुआ, तब ऐसी बात हो कैसे सकती है ?

मगनचन्द : नहीं हो सकती !

सूरजभान : नहीं ?

मगन, गोपी : नहीं, बिल्कुल नहीं !

सूरजभान : (**आंखों में चमक और उत्साह**) नहीं...तब... तब.....तो हमारे सपनों को हमसे कोई नहीं छीन सकता ।

मगन, गोपी : कोई नहीं छीन सकता ।

[तीनों के चेहरे विश्वास और आशा से दीप्त हो उठते हैं और वे एक ही तरफ देखने लगते हैं, मानो वहां से आशा की किरण आती हो । आइए, हम आप इन्हें अब यहीं छोड़ दें ।]

(पर्दा गिरता है ।)

परिशिष्ट

मैं भी खेल चुका हूं !

[कुछ रंगमंचीय अनुभव]

रंगमंच का चस्का मुझे बचपन में ही लग गया था, कौन-सा नाटक, पहले-पहल देखा, यह तो निश्चित रूप से नहीं कह सकता, लेकिन अपने सर्वप्रथम अभिनय की याद ताजा ही है। बात शायद सन् '२५ की है जब मेरा वर्णमाला से परिचय नया ही था। मेरे अन्तरंग बन्धु नरेन्द्र (आजकल हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्रीनरेन्द्र शर्मा) स्कूल में मुझसे तीन-चार कक्षा आगे थे, लेकिन कद और चंचलता के नाते मेरा उनका जोड़ा शुरू में ही कायम हो गया। इस दोस्ती की बुनियाद पड़ी इसी अभिनय में। स्कूल के वार्षिकोत्सव के लिए तैयारियां हो रही थीं। तभी किन्हीं अध्यापक महोदय ने सोचा कि एक लघु नाटक में मेरा भी पार्ट रहे। आवृत्ति यानी 'रेसिटेशन' में कई बार सिक्का जम चुका था; झिझक शायद ही कभी हुई हो; इसलिए इस नये खेल में बड़े चाव और उत्सुकता के साथ में शामिल हो गया। तय हुआ कि बदरीनाथ भट्ट के प्रहसन 'चुंगी की उम्मीदवारी' के दो दृश्यों को खेला जाय।

अभी कुछ दिन हुए 'चुंगी की उम्मीदवारी' का एक नया संस्करण देखने को मिला। लेकिन मेरे मन में तो उसकी वही प्रति बस गई है—गुटिका साइज की, पुराने ढंग के टाइप में छपी, काले कवर की पुस्तक। उस जमाने के लिए वह एक अप-टू-डेट नाटक था। उसमें न शेर थे, न जोशीले भाषण। साधारण बोल-चाल की भाषा या कहीं-कहीं विद्रूप और व्यंग्य का फव्वारा। चरित्र-चित्रण कहीं-कहीं तो बिल्कुल यथार्थानुकूल था, कमजोरियों और स्वभावजनित कारनामों का यथातथ्य खाका खींचा गया था। लेकिन जैसा प्रहसनों में होता है, कुछ पात्र किसी खास कमजोरी या बहक या सनक या आदत के मूर्तमान स्वरूप हो गये थे। ऐसे पात्र अतिरंजना की प्रचुरता में पनपते हैं और प्रायः उसी में अपना अस्तित्व भी खो बैठते हैं। लेकिन यदि उनमें से कोई एक परम्परा की पहली कड़ी बन गया तो समझ लीजिए अमर भी हो गया। संस्कृत के जिस नाटककार ने सब से पहले पेटू पंडित की कल्पना की, वह बड़ा भाग्यवान् था, क्योंकि उसकी कृति कई पीढ़ियों तक रसज्ञों का कण्ठहार बनी रही। इसी तरह बेन जान्सन के ज़माने में कंजूस का बोलबाला था; शेरिडन और गोल्डस्मिथ के युग में फैशन के भूत पर सबकी नजर थी; कुछ भारतीय देहाती नाटकों में विवाहोत्सुक वृद्ध लोकप्रिय नायक रहा है। बदरीनाथ भट्ट ने अतिरंजना शैली में कई मौलिक पात्रों की सर्जना की, लेकिन परिवर्तनप्रिय इस युग ने उन्हें अपनाया नहीं और 'चुंगी की उम्मीदवारी' के सेठ जी और शकूर मियां हमारी स्मृति में संस्था के रूप में स्थापित न हो पाये।

इसीलिए उस नाटक से अधिक प्रभावोत्पादक पात्र वे थे जिन्हें गढने में भट्ट जी ने प्रयासहीन कौशल से काम लिया था—उम्मीदवारों के पैरवीकार, परेशान वोटर, खुशामदी टट्टू इत्यादि-इत्यादि, वे लोग 'कारटून' नहीं थे; दैनिक अनुभव में पाये जाने वाले व्यक्तियों की छाया थे। मुझे एक पैरवीकार का 'पार्ट' दिया गया। नाम था कन्हैया,

काम था अपने उम्मीदवार मामाजी के लिए वोट मांगते-मांगते, अपने कोमल शरीर की द्रुतगामिनी क्षीणता पर अफसोस करते-करते प्रतिपक्षी के पैरवीकार से भिड़ जाना। वह मुठभेड़ ही उस दृश्य का चरमोत्कर्ष थी। प्रतिपक्षी के पार्ट के लिए नरेन्द्र को चुना गया था। उन्हें एक बहरे पैरवीकार का पार्ट करना था जो रुपये देकर 'वोट' खरीद रहा था। उनके साथ झड़प होते-होते मुझे उनके रुपयों की थैली लेकर भागना था। लेकिन नरेन्द्र इन सब मामलों में हमेशा मुझसे अधिक फुर्तीले रहे हैं ! अतः नाटककार की मंशा के बावजूद, उस मुठभेड़ में उन्होंने थैली से हाथ धोना मंजूर नहीं किया। मुमकिन है अभिनय की मुठभेड़ असली मुठभेड़ में तबदील हो जाती, लेकिन नाटककार ने गालियों का इतना मनोरंजक संग्रह किया था कि हम दोनों और दर्शकों का ध्यान उधर बँट गया। उस वार्तालाप का कुछ नमूना यह है:—

क०—शक्ले-हैवान !

व०—बेईमान !

क०—चोर !

व०—सीना जोर !

क०—कंजूस !

व०—मक्खीचूस !

क०—मनहूस !

न०—उस्तखद्दूस !

व०—विलायती बिल्ली !

क—हिन्दुस्तानी तिल्ली !

वगैरह-वगैरह।

इस प्रथम प्रहसन के बाद हास्य-प्रधान नाटक में मैंने शायद एकाध बार और हिस्सा लिया होगा। सुदर्शन के 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' नामक प्रहसन को हम दोनों ने खेला था। बहुत दिन बाद प्रयाग-विश्वविद्यालय

फ्राइडे क्लब द्वारा अभिनीत 'मर्चेण्ट आव वेनिस' से सम्बद्ध एक रूपक में भी मुझे लान्सलाट गोबो नामक विदूषक का पार्ट लेना पड़ा था, जिसका ज़िक्र आगे करूँगा। लेकिन स्वभावत: मैंने अपने को कॉमिक पात्रों के अयोग्य पाया। स्वभावतया योग्यता और रुझान का ध्यान प्राय: हमारी एमेचर नाटक मण्डलियाँ पात्रों के चुनाव में कम ही रखती हैं। सोचा जाता है कि जो भी रंगमंच पर उतर सका वह किसी भी पात्र के लिए अच्छा अभिनेता है। सिनेमा में तो ऐसी गलती अकसर की जाती है। मोतीलाल को एक करुणार्द्र रोमाण्टिक नायक के रूप में देखकर न रुलाई आती है, न हँसी। पृथ्वीराज के नाटक 'कलाकार' में चपल पहाड़ी लड़की की भूमिका में उज़रा मुमताज़ बिल्कुल नहीं जँची, चूंकि उनका व्यक्तित्व गद्दार की नायिका जैसी अन्तर्द्वन्द्व पूर्ण भूमिका में अधिक उभरता है।

प्रहसन के अभिनय में कुछ हद तक अपने को भूलने की क्षमता अधिक अपेक्षित है। गम्भीर भूमिका में अभिनेता के लिए निजी भावनाओं और वार्तालाप में अन्तर्हित भावप्रवाह के बीच तादात्म्य स्थापित करना इतना कठिन नहीं होता। शायद उसका एक कारण यह है कि गम्भीर पात्र की समीचीन अभिव्यक्ति के लिए बाह्य उपकरणों, वातावरण और अन्य पात्रों के ऊपर इतना निर्भर नहीं रहना पड़ता जितना निजी भावोन्मेष पर।

जो भी हो, मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि मैं विदूषक के रूप में प्रभावपूर्ण अभिनय नहीं कर सकता। कुछ दिनों बाद नरेन्द्र और मैं कुश और लव की भूमिका में उतरे। नाटक किसका लिखा हुआ था यह अब याद नहीं पड़ता, लेकिन 'लवकुश' की कहानी से मैं इतना प्रभावित हुआ कि मेरी सर्व प्रथम रचनाओं में से एक एकांकी इसी विषय पर है जो १९३० या १९३१ में प्रयाग की मासिक पत्रिका 'सेवा' में प्रकाशित हुआ था। मेरी फ़ाइल में उस प्रारम्भिक रचना का विशिष्ट स्थान है।

'लवकुश' का जो अभिनय मैंने और नरेन्द्र ने किया था, वह उससे पहले की बात है। अभिनय सफल हुआ था इतना मुझे याद है, लेकिन उसमें सब से मज़ेदार बात शायद यह थी कि कुश (नरेन्द्र) तो गोरे थे, लव (मैं) सांवला और जो मित्र रामचन्द्र बने थे वह बिल्कुल स्याह थे, ऐसे काले कि पाउडर इत्यादि भी उस नीलावृत्त घनसमूह की प्रगाढ़ कालिमा को हल्का न कर सके! असल में स्कूलों के अभिनय में यदि प्रसाधनों और चमक-दमकपूर्ण पोशाकों का कम ही इस्तेमाल किया जाय तो अच्छा है। उन दिनों तो रंग-बिरंगी पोशाकों और चमकते आभूषणों के बिना नाटक खेला ही नहीं जा सकता था। नाटककार भी पोशाक प्रसाधन के विषय में कोई आदेश नाटक में नहीं देते थे, क्योंकि पोशाक के विषय में कुछ सर्वस्वीकृत 'सिद्धान्त' थे। राजा चाहे पौराणिक युग का रहे चाहे राजपूत युग का, पहनेगा वह चूड़ीदार पाजामा, बूटेदार अचकन, राजस्थानी साफ़ा और कमरबन्द! आधुनिक यथार्थवादी अभिनय के युग में ये बातें हास्यास्पद लगती हैं। लेकिन यूरोप के मध्ययुगीन लोक-रंगमंच में और भारतवर्ष में कथाकाली इत्यादि अभिनयों में पोशाक के विषय में कुछ परम्पराएँ स्थापित हो गई थीं। यदि ऐसा न हो, तो लोक-रंगमंच तो चल ही नहीं सकता, क्योंकि लोक-रंगमंच अलग-अलग नाटककारों के ऊपर निर्भर नहीं करता; वह तो परम्परा और लोकाभिव्यक्ति के सहारे विकसता है। लोक-रंगमंच की इस प्रवृत्ति का प्रभाव हमें संस्कृत नाट्य-शास्त्रों में पात्रों के वर्गानुसार उनकी वेश-भूषा में रंग के चुनाव के उल्लेख में मिलता है। यूनानी नाटक के अभिनय में तो दर्शक पोशाक की कुछ विशेषताओं से फौरन पहचान लेते थे कि रंगमंच पर कौन पात्र आया। एस्किलस के शायद सबसे पहले नाटक 'दि सप्लाइन्ट्स' में ही यह परम्परा स्थापित हो गई थी कि नायक यदि वह राजा है, तो ऊँचे तले और एड़ी के जूते पहनेगा और उसके सिर पर 'ओंकस'. नामक जूड़ा होगा, जिससे उसके व्यक्तित्व

का रोब झलके ! लेकिन जैसा मैंने ऊपर कहा, इन परम्पराओं की बुनियाद लोक-रंगमंच में पड़ी थी। परन्तु पारसी थीएट्रिकल कम्पनियों के असर से हम लोग पोशाकों और प्रसाधन की जो रीति मानते थे, उसका तो एकमात्र आधार थी भड़कीलेपन से दर्शकों को चकाचौंध कर देने की इच्छा। जो जितनी ही कीमती पोशाक पहनता था, उतना ही उसका रोब रहता था। न जाने कितने रईसों के घरों की खाक पोशाकों की खोज में हम लोग छाना करते थे।

'लवकुश' के बाद, 'चन्द्रहास' की भूमिका में मुझे उतरने का अवसर मिला। उसमें भी नरेन्द्र मेरे साथ थे। उसकी खूबी थी ब्रजभाषा के कुछ मनोहर दोहे, सवैये और छंद, जिनकी छटा गद्यमय वार्तालाप को आकर्षक बना देती थी। वे छंद मुझे बरसों तक याद रहे और हिन्दी कविता में मेरी अभिरुचि उन्हीं के द्वारा आरम्भ हुई। संस्कृत नाटकों की शैली में भारतेन्दु युग के नाटकों में हम इस प्रकार के छन्दों की बहुलता पाते हैं, जो कोरे पद्यांश ही नहीं नाटकों के अलंकार हैं। उनकी अस्वाभाविकता अखरती नहीं; नाटक को चार चांद लगा देती है। अत्याधुनिक पाश्चात्य नाटकों की गतिविधि से मालूम पड़ता है कि रंगमंच का तथाकथित यथार्थाग्रह कोई अच्युत सिद्धान्त नहीं। क्रिस्टोफर फ्राई और टी० एस० इलियट ने अंग्रेजी यथार्थवादी नाटकों की धारा को पलट ही दिया और अब तो खूब धड़ाके के साथ रंगमंच पर काव्यात्मक नाटक खेले जा रहे हैं। रही कृत्रिमता की बात, तो उसके जवाब में पूछा जा सकता है कि यदि बर्नार्ड शॉ के पात्रों द्वारा बोल-चाल से कहीं ऊँचे स्तर की भाषा में, जीवन के गहन तत्त्वों का लम्बे वाक्यों में प्रतिपादन हमें अस्वाभाविक नहीं जान पड़ता, तो भारतेन्दु के पात्रों के अर्थगाम्भीर्य और सशक्त सौन्दर्यपूर्ण दोहों से हम क्यों भड़क उठते हैं? क्या इसीलिए कि एक गद्य है और दूसरा पद्य ? वस्तुतः तो दोनों काव्य हैं और दोनों का नाटक की आत्मा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अस्वाभा-

विकता का पुट तो उस समय आता है, जब इन काव्यांशों का स्थान कोरे पद्य ले लेते हैं। राधेश्याम, आगा हश्र काश्मीरी और बेताब इत्यादि के नाटकों के शेर कविता नहीं, अलंकार नहीं, केवल पद्य हैं जिसके द्वारा अभिनेता को अपने हाथ-पैर चमकाने और अपने स्वर की प्रखरता प्रकाशित करने का मौका मिलता था। हिन्दी नाटकों के ह्रास और उसमें से 'साहित्यिकता' के तिरोहण का एक प्रमुख कारण यही था कि भारतेन्दु-युग के काव्यात्मक शैली के दोहों, सवैयों, छन्दों का स्थान पारसी थीएट्रिकल युग के 'बतंगड़ों' अशआर ने ले लिया। न उनमें उर्दू अशआर की व्यंजना थी और न हिन्दी कविता की मार्मिकता। थी एक सस्ती भावुकता और उत्तेजना जिसका नमूना है 'वीरअभिमन्यु' का यह चरण:—

"जिस व्यूह के मुखद्वार का तू नागराज है।
वह व्यूह और व्यूह की सब शान तोड़ दूं।"
(ताली और 'वाह वाह'।)

लेकिन उस जमाने में तो इसी का बोलबाला था और मुझे यह मानने में कतई संकोच नहीं कि इस शैली के अभिनेताओं में अपने जिले में मेरा एक प्रधान स्थान था। राधेश्याम जी का 'वीर अभिमन्यु' नाटक उन दिनों का शायद सबसे लोकप्रिय नाटक था, और उसमें अभिमन्यु की भूमिका में मेरा अभिनय बहुत पसन्द किया जाता था। यहां तक कि १९३२ में जब मैं हृषिकेश में एक स्काउट कैम्प में गया हुआ था (जिसके अधिष्ठाता थे पं० श्रीराम बाजपेयी) तब बाबा काली कमलीवाले ने खास तौर से हम लोगों से यह नाटक कराया और उसकी बड़ी 'वाहवाही' हुई। उस पात्र का अभिनय करते समय मुझे एक नशा-सा चढ़ जाता था, जिसमें न यह ख्याल रहता था कि मैं 'मैं' हूँ या 'अभिमन्यु'। बहरहाल उस नाटक का वह अंश जिसमें अभिमन्यु घेर कर मारा जाता है, मेरी मां कभी नहीं देख पाती थीं, बीच ही से उठ कर चली

जाती थीं। हमारे एक मित्र और अध्यापक श्री लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज उस नाटक में अर्जुन का पार्ट इस खूबी से अदा करते थे कि दर्शकों के आंसू मुश्किल से रुक पाते और जिस समय वह भर्राई आवाज में कहते "जाग जाओ गीदड़ो चमगादड़ो"...उस समय दर्शक भवन में एक सन्नाटा-सा छा जाता, और सारा जन-समूह कण्ठावरुद्ध हो जाता। इसमें कोई संदेह नहीं कि राधेश्याम का 'वीर अभिमन्यु' अपने जमाने की एक संस्था था और उसकी उत्तेजनापूर्ण शैली उस युग के नवयुवकों को बहुत भाती थी। नरेन्द्र उस नाटक में प्रायः श्री कृष्ण का पार्ट किया करते थे। उसके बाद ही से नरेन्द्र धीरे-धीरे उत्तेजनापूर्ण अभिनय से दूर हट कर सुकुमार और कमनीय अभिनय की ओर खिच गये जिसके लिए वे रूपरंग से पूरी तरह उपयुक्त भी थे। वे मुझसे चार साल पहले ही प्रयाग विश्वविद्यालय में आ गये थे और वहां हिन्दू बोर्डिंग हाउस में स्त्री-पात्रों के अभिनय के लिए उनकी प्रायः मांग रहा करती थी। १९३४ में शायद उन्होंने अपना अंतिम अभिनय श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'संन्यासी' में किया था। उस अभिनय में 'पार्ट' लेने वाले व्यक्तियों में आजकल के प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल और भूले हुए साहित्यिक वीरेश्वर सिंह भी थे।

वीर अभिमन्यु के बाद स्कूल में और भी नाटक हम लोगों ने खेले लेकिन और किसी में मैं इतना सफल नहीं हुआ। उन्हीं दिनों द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों से मेरा परिचय हुआ और उन पर मैं इतना मुग्ध हो गया कि एकाध नाटक के कई पृष्ठ मुझे कण्ठाग्र थे। चूंकि द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में शेर नहीं थे इसलिए हमारे नगर में तो उनका 'चलना' मुश्किल था, लेकिन मैं प्रायः दूसरे नाटकों में अपने 'पार्ट' के बीच में डी० एल० राय के कुछ वाक्य अपने आप ही शामिल कर लेता था। शायद मेरी नाट्यरचना का प्रथम प्रयास यही प्रक्षेप थे! मुझे खूब याद है कि एक बार जब हम लोग किन्हीं साधारण लेखक के 'दुर्गादास'

का अभिनय कर रहे थे, तो मैंने इसी नाम के डी० एल० राय के नाटक में से चन्द वाक्य अपने पार्ट में जोड़ लिए थे। मैं दुर्गादास के भाई की भूमिका में था। मेरे अभिनय का प्रभाव उन वाक्यों से द्विगुणित हो जाता, लेकिन मेरी निराशा का अन्दाज कीजिए कि जहां वे वाक्य मुझे कहने थे, वहीं उससे पहलेवाला वाक्य दुर्गादास महोदय भूल गये! मैं अपने आप उसे कह भी नहीं सकता था, क्योंकि मेरे पहले शब्द थे—"अनुमान! इसे आप अनुमान कहते हैं, भाई साहब?"

द्विजेन्द्रलाल राय के अतिरिक्त एक और प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा जिसने रंगमंच-सम्बन्धी मेरी धारणाओं को धीरे-धीरे बदल दिया। प्रारम्भ से ही हम लोग अंग्रेजी के कुछ 'डायलॉग' (संवाद) स्कूल के उत्सवों के अवसर पर उपस्थित किया करते थे। उनमें से कुछ एकांकियों के रूप में होते थे। फ्लोरा स्टील नामक लेखिका का एक संग्रह भारतीय इतिहास की झांकियों के रूप में था। इसके नाटक हम लोगों को बहुत प्रिय थे। संवादों की शैली भावात्मक होते हुए भी छिछली न थी। उन्हीं दिनों मैंने स्वयं अंग्रेजी में एक लघु नाटक उस अंग्रेजी कविता के आधार पर लिखा जिसमें केसेबियाँका नामक वीर बालक जलते हुए जहाज पर अपने स्थान को न छोड़ कर कर्तव्य-पालन में अपने प्राण की आहुति दे देता है। हम लोगों ने स्कूल में उस अंग्रेजी नाटिका का प्रदर्शन भी किया; दुर्भाग्यवश मेरे पास उसकी एक भी प्रति नहीं रह गई है। सन् '३२ में मुझे शेक्सपियर के 'ऐज़ यू लाइक इट' के उस दृश्य का अभिनय करने का अवसर मिला जिसमें जाक्स का वह अमर भाषण है—"आल द वर्ल्डज ए स्टेज"। इन अंग्रेजी नाट्यदृश्यों को प्रस्तुत करने में हम लोगों को न तो बहुत भव्य स्टेज तैयार करना पड़ता और न अभिनय में विशेष उत्तेजना दिखानी पड़ती। 'वीर अभिमन्यु', 'ईश्वर भक्ति' और 'चन्द्रहास' इत्यादि के लिए तो रंगबिरंगे पर्दों इत्यादि के बिना काम ही न चलता था। लेकिन अंग्रेजी सीन-सिनरी उपस्थित करने के साधन न

होने के कारण उन्हें हम प्राय: खुले रंग-बिरंगे पर्दे पर ही खेला करते। इस तरह अभिनय पर अधिक जोर डालना पड़ता और ऊपरी टीम-टाम पर कम।

आगे चल कर सन् १९३३ में जब इलाहाबाद के यूइंग क्रिश्चियन कालिज में पहुँचा तब मुझे पहले-पहल अभिनय की आधुनिक-कला को समझने का अवसर मिला। हमारे अंग्रेजी के अध्यापक श्री० बिस्वास ने शेक्सपियर के 'जूलियस सीज़र' और 'मर्चेण्ट आव वेनिस' से कुछ चुने हुए दृश्यों के अभिनय का आयोजन किया। यवनिका के लिए टेनिस क्लब के पर्दे इस्तेमाल किये गये। पोशाक तैयार करने में अमेरिकन अध्यापकों ने मदद दी। किन्तु हम लोगों को विशेष तैयार किया गया अभिव्यक्ति और 'एक्टिंग' में। श्री ० बिस्वास स्वयं सिद्धहस्त अभिनेता थे।.रिहर्सल बहुत दत्तचित्त होकर कराते और हम लोगों को अपने-अपने 'पार्ट' का खूब अभ्यास करना पड़ा। मुझे 'जूलियस सीज़र' के प्रसिद्ध फ़ोरम सीन में मार्क एण्टनी की भूमिका मिली और आज तक मुझे मार्क एण्टनी के भाषण के वे शब्द स्फुरित कर देते हैं जिसमें वह सीज़र के हत्यारों के विरुद्ध आवाज़ उठाते समय कहता है, "दोस्तो, रोम निवासियो और प्यारे देशवासियो! मैं सीज़र को दफ़नाने आया हूँ, उसका गुणगान करने नहीं...!" उस भाषण का अभ्यास करते समय बिस्वास साहब से एक बड़े काम की बात मैंने सीखी जिसे स्वर-वैचित्र्य का नाम दिया जा सकता है। उन्होंने बताया कि नाटक में अभिनेता को प्रत्येक वाक्य या वाक्यांश को निजी सत्ता देनी है। जहां लम्बे भाषण हों वहां तो विविधता यों भी आवश्यक है। एक ही लय, एक ही स्वर में चार-पांच वाक्यों को लगातार नहीं बोलना चाहिए। अभिनेता की परिस्थिति थोड़ी बहुत संगीत-साधक से मिलती-जुलती है। उसे न सिर्फ़ जीवन के एक अंश का प्रदर्शन करना है, बल्कि साथ ही, एक कलात्मक सृष्टि भी करनी है। यानी एक-एक वाक्य के अर्थ और महत्ता को समझ कर उसको

इस तरह बोलना है कि अन्य वाक्यों से यह भिन्न हो। कहीं-कहीं तो भिन्न-भिन्न शब्दों का 'नाद रूप' स्थिर करना आवश्यक हो जाता है। मार्क एण्टनी के भाषण में तीन जगह हत्यारों के लिए यह वाक्य कहा गया है "वे लोग, वे सब लोग, भलेमानस हैं।" (दे आर ऑल ऑल जेण्ट्लमेन)। पहली बार इस वाक्य के 'वे लोग' शब्दों पर ज़ोर डालना था, दूसरी बार 'भलेमानस' पर और तीसरी बार "हैं" पर। इस तरह क्रमिक विकास से स्वर-वैचित्र्य द्वारा शेक्सपियर के गहरे व्यंग्य को अभिव्यक्त किया जा सकता है।

गत वर्ष पृथ्वीराज ने मुझे बताया कि 'पठान' में उन्होंने सामूहिक रूप से स्वर वैचित्र्य के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। कुछ स्थलों में छः-सात पात्र एक के बाद एक, ऐसे स्वर में बोलते हैं कि सम्पूर्ण सप्तक के आरोह या अवरोह का आभास होता है। कहना नहीं होगा कि संगीतानुगामी इस कलात्मक प्रदर्शन को स्वाभाविक रूप में उपस्थित करने के लिए अभ्यास और परिश्रम की आवश्यकता है।

'जूलियस सीजर' के अभिनय की तैयारियां खास तौर से हम लोगों ने इसलिए की थीं कि हमारे उत्सव के मुख्य अतिथि उस रोज प्रयाग विश्वविद्यालय के सुविख्यात विद्वान प्रोफेसर अमरनाथ झा थे। दुर्भाग्यवश झा साहब जब तक पहुँचे, मेरा 'पार्ट' खत्म हो चुका था, और मैं उन्हें अपना हुनर दिखा ही न सका। उसके दो वर्ष बाद यानी सन् १९३५ में मुझे झा साहब की वरद छाया में विद्याभ्यास का अवसर मिला और तभी उन्हीं के आग्रह से मुझे पुनः नाट्य-रचना की ओर झुकना पड़ा। म्योर होस्टल, जिसके वे उन दिनों वार्डन थे, प्रति वर्ष दीक्षान्त महोत्सव पर अंग्रेजी नाटकों को प्रस्तुत किया करता था। मैंने हिन्दी नाटक के भी अभिनय का प्रस्ताव किया। झा साहब तो राजी हो गये लेकिन शर्त रखी कि नाटक ४५ मिनट से ज्यादा का नहीं होना चाहिए। उन दिनों हिन्दी में एकांकी नाटकों का चलन नहीं था।

भुवनेश्वर प्रसाद का कारवां शायद उसके कुछ महीने बाद प्रकाशित हुआ। हिन्दी में एकांकीकार शायद अकेले स्वर्गीय गणेशप्रसाद द्विवेदी थे। (रामकुमार जी उन दिनों कवि के रूप में ही समादृत होते थे।) मैंने माधुरी में उनका एकांकी 'पर्दे का अपर पार्श्व' पढ़ा, तो रंगमंच के विचार से खेलने योग्य जँचा। उन्हीं दिनों सुना कि वह नाटक द्विवेदी जी के संग्रह 'सोहाग विन्दी' के नाम से इंडियन प्रेस से छप रहा है। मैं इंडियन प्रेस जा पहुँचा और उस पुस्तक की पहली प्रति मैंने ही खरीदी। अभिनय की तैयारियां शुरू हो गईं। मैं उस नाटक का निर्देशक और 'प्राम्प्टर' था, लेकिन स्वयं रंगमंच पर नहीं उतरा। म्योर होस्टल में वह हिन्दी नाटक का पहला अभिनय था और प्रयाग में एकांकी के सर्वप्रथम अभिनयों में से एक। समस्यामूलक और घटनाशून्य होते हुए भी वह नाटक काफी प्रशंसित हुआ और मुझे अपने उस नूतन प्रयोग से प्रोत्साहन भी मिला और उपयोगी अनुभव भी।

जिन दिनों उस एकांकी का रिहर्सल हम कर रहे थे, द्विवेदी जी को सूचना मिली कि हम लोग उनके नाटक का अभिनय कर रहे हैं। वे बेचारे स्वयं म्योर होस्टल आये और अपने सुझाव उन्होंने हमें दिये। तभी मैंने समझा कि प्रायः उत्साही आयोजकगण नाटककार की पूर्व अनुमति लिए बिना अभिनय पर जो जुट जाते हैं, उसमें नाटककार का वे कितना भारी अपमान करते हैं।

एक वर्ष बाद सन् १९३६ के वार्षिकोत्सव के लिए झा साहब ने स्वयं हिन्दी एकांकी की मांग की और तब मैंने आधुनिक शैली में अपना पहला एकांकी "मेरी बांसुरी" लिखा। लिखने से पूर्व मैंने अभिनेताओं की फेहरिस्त बना ली और उनके व्यक्तित्व को मद्देनज़र रखते हुए ही अपने नाटक के पात्रों की सृष्टि की। फलस्वरूप अभिनय में हम लोगों को कुछ आसानी हो गई। रिहर्सल के समय अक्सर झा साहब स्वयं आ जाते। हर अभिनय से मैंने कुछ-न-कुछ सीखा। 'मेरी बांसुरी' में

एक भावुक आदर्शवादी नवयुवक का पार्ट मुझे करना था, लेकिन कहीं-कहीं भावुकता के आवेश में आकर मैं बहुत उत्तेजित हो जाता था। झा साहब ने लगाम खींची और मैंने जाना कि भावावेश का अभिनय भी तभी प्रभावोत्पादक होता है जब उद्वेलन का संकेत हो, झंझा नहीं। पटने में कई अभिनय पिछले दो वर्षों में देखने को मिले हैं और प्रायः सभी में मुझे यह दोष दीखा कि भावुक पात्र पूरे नाटक के दौरान में एक विचित्र आवेश में रहते हैं; हर वाक्य में तनाव (टेन्शन), "शब्द-शब्द है सुधि का दर्शन, चरण-चरण है आह।" आखिर इतनी अनियंत्रित और सर्वव्यापिनी उत्तेजना की जरूरत क्या है ? रोज़ाना की बातचीत में अक्सर हम लोग उत्तेजित हो जाते हैं, लेकिन यह तो नहीं होता कि पूरे घंटे भर कम्पित स्वर और आवेशपूर्ण मुद्रा में बोलते रहें। और फिर उसी स्तर पर बराबर बोलते रहने के कारण जो वस्तुतः उत्तेजनापूर्ण स्थल हैं उनका पूरा-पूरा प्रभाव लक्षित नहीं हो पाता। कांच-खंडों की लड़ी में असली हीरा खो जाता है।

जिस उत्सव पर 'मेरी बांसुरी' का अभिनय हुआ उसमें इलाहाबाद के तत्कालीन कमिश्नर श्री वी० एन० मेहता मुख्य अतिथि थे और उन्होंने लेखक और निर्देशक को एक पुरस्कार देने की घोषणा भी की। किन्तु कुछ महीने बाद उनकी मृत्यु ही हो गई और मुझे घोषणा मात्र से सन्तुष्ट हो जाना पड़ा। उसके बाद से प्रयाग में मुझे कई नाटक लिखने और खेलने के अवसर मिलते रहे। १९३७ में 'भोर का तारा' लिखा और वह रंगमंच पर खूब जमा। उसके पहले अभिनय में ही मैं गुप्तकालीन पात्र बन कर मय चश्मे के रंगमंच पर जा पहुँचा ! भाग्यवश यह वैषम्य दर्शकों को उस समय नहीं खटका लेकिन एक दूसरे अवसर पर मुझे इस लापरवाही के लिए बड़ी लताड़ पड़ी। फ्राइडे क्लब ने मर्चेण्ट आव वेनिस का काल्पनिक छठा अंक खेला; शेक्सपियर ने तो पांच ही अंकों का नाटक लिखा है। हमारे अंग्रेजी के

प्राध्यापक डा० दस्तूर ने छठा अंक लिख कर यह अनुमान करने की चेष्टा की कि शेक्सपियर के पात्रों पर उसके बाद क्या बीती होगी। मुझे विदूषक 'लान्सलाट गोबो' का पार्ट दिया गया। अंग्रेजी नाटकों में विदूषक को मूर्ख (फूल) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जब मैं अपना अभिनय करके ग्रीनरूम में वापस पहुँचा, तो डा० दस्तूर थोड़ी देर बाद आये और कहने लगे--"ओ फूल, फूल !" (अरे मूर्ख, मूर्ख !) मैं समझा कि मुझे विदूषक का सफल अभिनय करने पर बधाई दी जा रही है ! लेकिन जब दस्तूर साहब ने उन शब्दों को दोहराया, तो मैंने देखा कि उनकी मुद्रा बधाई या आशीर्वाद देने वाले गुरुजन की नहीं है। वह तो मुझे नाटकवाला 'मूर्ख' नहीं, असली मूर्ख बना रहे थे ! मालूम हुआ कि मैंने वाकई बड़ी मूर्खता की थी और १५वीं सदी के वेनिस में २०वीं सदी का चश्मा पहने जा पहुँचा था।

१९३५ से १९३९ तक मुझे एमेचर रंगमंच के सभी विषयों का अनुभव हुआ। मैं कई नाटकों के आयोजन में केवल प्राम्पटर रहा था, कुछ में निर्देशक, कुछ में अभिनेता और नाटक तो लिखे ही। सन् ३८ में अपनी बहन के कालेज के वार्षिकोत्सव के लिए कलिंग-विजय लिखा जिसमें मुझसे मांग की गई कि पुरुष पात्र एक से ज्यादा न हो; गाने हों, प्राचीन वेश-भूषा हो ! मेरी बहन के कालेजवालों ने मुझे आमंत्रित तो नहीं किया, लेकिन सुना कि अभिनय बहुत अच्छा रहा; पर एक कसर रह गई। एक पात्री को अपनी कंचुकी में से एक पत्र निकाल कर सम्राट् अशोक को देना था, लेकिन वह बेचारी पत्र ले जाना ही भूल गई, बस सम्राट् हैं कि प्रतीक्षा कर रहे हैं, और पात्री है कि पत्र देने की घोषणा करने के बाद निष्क्रिय खड़ी है ! समझ लीजिये की कोरिया की संधिवार्ता का-सा गतिरोध हो गया ! खैर, मेरी बहन ने जल्दी से पर्दा गिरा दिया और पत्र पकड़ा देने के बाद उठा दिया। दर्शक समझे की शायद नाटककार की प्रतीकवादी योजना है !!

उसके बाद भी नाटक तो कई लिखे और उनका अभिनय तो यत्र-तत्र होता ही रहा है, किन्तु सरकारी नौकरी में इतना अभिनय करना पड़ता है कि रंगमंच के अभिनय की गुंजाइश ही नहीं ! अब पिछले दो वर्षों से लोक-रंगमंच के आयोजन का बीड़ा उठाया है। उसके अनुभव अभी हो ही रहे हैं और उनकी अपनी कथा है जिनका विवरण फिर कभी लिखूंगा।

हिन्दी रंगमंच के भविष्य के विषय में मेरी क्या धारणाएँ हैं यह मैं 'कोणार्क' के परिशिष्ट में लिख चुका हूँ। जहां एक ओर पृथ्वीराज जैसे महान् कलाकार उच्च कोटि के और सर्वसाधन-सम्पन्न व्यावसायिक रंगमंच की स्थापना कर रहे हैं, वहां दूसरी ओर अव्यावसायिक (एमेचर) अभिनेताओं और निर्देशकों को भी इस पुण्य-यज्ञ में योगदान देते रहना है। विद्यालयों में ही नहीं, क्लबों और सामाजिक संस्थाओं को भी नाट्यशालाएँ स्थापित करनी चाहिए, और साहस के साथ अभिनेय न समझे जानेवाले नाटकों को प्रदर्शित करना चाहिए। पटने ही का अंग्रेजी नाटक क्लब (जिसमें अधिकतर भारतीय सदस्य हैं) 'क्लिओपाट्रा' और "टाइम हैज़ अ स्टौप" जैसे 'कठिन' नाटकों का अभिनय कर सकता है, लेकिन हमारी हिन्दी नाट्यमंडलियां स्वप्नवासवदत्ता अथवा भारतेन्दु, प्रसाद इत्यादि के नाटकों के नाम से ही दूर भागती हैं। हम लोग नाटककार के साथ न्याय नहीं करते। मेरा तो विचार है कि ये अव्यवसायिक नाटक मंडलियां बड़े रंगमंच के लिए प्रयोगशालाओं के तुल्य होनी चाहिए ! हमारे छोटे-मोटे अनुभव, हमारी भूलें, हमारी सफलताएँ पृथ्वीराज और शिशिर भादुड़ी के लिए पथ प्रदर्शक बनें—इस विश्वास और कामना ही से प्रेरित होकर मैंने भी अपने इन साधारण अनुभवों को लिपिबद्ध करने का दुस्साहस किया है।

जगदीशचन्द्र माथुर